प्रभु पधारे

—ब्रह्मदेश की पृष्ठभूमि पर रचित हृदयस्पर्शी उपन्यास—



लेखक
झवेरचंद मेघाणी

अनुवादक
श्यामू सन्यासी

प्रकाशकीय

भारतीय भाषाओं के चुने हुए उपन्यासों को हिंदी के पाठकों को सुलभ करने की दृष्टि से प्रारंभ की गई इस उपन्यास-माला में प्रस्तुत उपन्यास को निकालते हुए हमें बड़ा हर्ष हो रहा है। गुजराती के लब्ध-प्रतिष्ठ लेखक स्वर्गीय झवेरचंदजी मेघाणी की यह बड़ी ही लोकप्रिय कृति है। एक प्रकार से निराली भी। इसमें उन्होंने ब्रह्मदेश के लोक-जीवन की अत्यंत सजीव एवं मर्मस्पर्शी झांकी उपस्थित की है। साथ ही यह भी बताया है कि बाहर के लोगों ने वहां आकर किस प्रकार अपने धंधे जमाये और पैसे कमाये। बाद में जब वहां क्रांति हुई, तो किस प्रकार इन विदेशियों को वहां से भागना पड़ा। पाठक देखेंगे कि उपन्यासकार की दृष्टि कितनी पैनी थी। तभी तो वे ऐसे चित्र अंकित कर सके कि उन्हें पढ़कर अनेक स्थलों पर हृदय विचलित हो उठता है।

इस माला की यह पांचवीं कृति है। पहली थी हिंदी की 'तट के बंधन', दूसरी मराठी की 'देवदासी', तीसरी कन्नड़ की 'कित्तूर की रानी' और चौथी बंगला की 'नवीन यात्रा'। ये सभी उपन्यास पाठकों को बहुत पसंद आये हैं। 'तट के बंधन' का तो दूसरा संस्करण भी हो गया है।

हमें आशा है कि अन्य उपन्यासों की भांति यह उपन्यास भी पाठकों को रुचिकर होगा।

—मंत्री

प्रकाशकीय

भारतीय भाषाओं के चुने हुए उपन्यासों को हिंदी के पाठकों को सुलभ करने की दृष्टि से प्रारंभ की गई इस उपन्यास-माला में प्रस्तुत उपन्यास को निकालते हुए हमें बड़ा हर्ष हो रहा है। गुजराती के लब्ध-प्रतिष्ठ लेखक स्वर्गीय झवेरचंदजी मेघाणी की यह बड़ी ही लोकप्रिय कृति है। एक प्रकार से निराली भी। इसमें उन्होंने ब्रह्मदेश के लोक-जीवन की अत्यंत सजीव एवं मर्मस्पर्शी झांकी उपस्थित की है। साथ ही यह भी बताया है कि बाहर के लोगों ने वहां आकर किस प्रकार अपने धंधे जमाये और पैसे कमाये। बाद में जब वहां शांति हुई, तो किस प्रकार इन विदेशियों को वहां से भागना पड़ा। पाठक देखेंगे कि उपन्यासकार की दृष्टि कितनी पैनी थी। तभी तो वे ऐसे चित्र अंकित कर सके कि उन्हें पढ़कर अनेक स्थलों पर हृदय विचलित हो उठता है।

इस माला की यह पांचवीं कृति है। पहली थी हिंदी की 'तट के बंधन', दूसरी मराठी की 'देवदासी', तीसरी कन्नड़ की 'कित्तूर की रानी' और चौथी बंगला की 'नवीन यात्रा'। ये सभी उपन्यास पाठकों को बहुत पसंद आये हैं। 'तट के बंधन' का तो दूसरा संस्करण भी हो गया है।

हमें आशा है कि अन्य उपन्यासों की भांति यह उपन्यास भी पाठकों को रुचिकर होगा।

—मंत्री

भूमिका

(गुजराती संस्करण से)

"फया लारे !" (प्रभु पधारे—देव आये) ब्रह्मदेशवासियों का यह स्वागत-संबोधन है। भारतवासियों में उन्हें सबसे प्रिय लगनेवाले गुजरातियों का वे इस शब्द से ही स्वागत करते हैं। मतलब यह कि यह उपन्यास गुर्जर-बर्मी जनता के संस्कार-संपर्क का आलेखन करता है।

बयालीस के साल में ब्रह्मदेश से भारतीयों का जो निष्क्रमण हुआ, वह इतिहास में अपूर्व है। उसीके प्रसंग-चित्र एकत्र करके पुस्तक-रूप में प्रस्तुत करने की इच्छा उत्पन्न हुई थी।

बाद में लगा कि यह संकल्प दुस्साध्य है। अधिक उचित तो अन्य प्रांतों के निवासियों के साथ गुजराती लोगों के संपर्क एवं संघर्षों का चित्रण करना होगा। गुजराती लोग पीढ़ियों से महाराष्ट्र और सिंध, बंगाल और मद्रास, बर्मा और अफरीका—सभी जगहों पर बसते आये हैं। इसके बावजूद उनके और स्थानीय लोगों के साहचर्य से उभरनेवाला सुविशाल जीवन लेखनी, साहित्य या चित्रपटों में स्थान नहीं पाता, यह एक बड़ी कमी है और एक बड़े साहित्य-पटल को खाली छोड़ देने जैसा है।

यह विचार मन में अधिकाधिक दृढ़ होता गया और ब्रह्मदेश में गुजराती जन-जीवन ने मन पर गहरी छाप डाल दी। कारण यह कि मेरे कुछ निकट के स्वजन ब्रह्मदेश के चिरवासी थे। उनसे तथा उनके अतिरिक्त वहां लंबे अर्से से रहनेवाले और इस आखिरी निष्क्रमण में मणीपुर के रास्ते से निकलकर आनेवाले कुछ भाइयों से मिलना हुआ। इन भाइयों में उल्लेखयोग्य और स्तुत्य जो बात लगी, वह ब्रह्मदेश की संस्कारिता के प्रति उनका प्रेम-भाव था। वहां की राष्ट्र-भावना से प्रभावित उच्च आत्म-संस्कारिता तथा वहां के ब्रह्मी जगत के प्रत्यक्ष संबंधों से उद्भूत मान-बुद्धि—इन दोनों का मिश्रण मुझे विस्मयकारी लगा। उन्होंने मेरे लिए पृष्ठभूमि तैयार की, कुछ विवरण भी उपलब्ध किये। बाद में कथा मैंने

रच दी। अपने इन सहायकों के नाम मैं जान-बूझकर यहां नहीं ले रहा हूं।

सभी पात्र कल्पित हैं, कथानक कल्पित है, फिर भी इस कृति की संपूर्ण भित्ति यथार्थ पर आधारित है। घटनाओं का प्रवाह सही है। अंतिम अध्यायों में जिस प्रकार युद्धकाल का आलेखन घटनाओं का सच्चा वर्णन न होकर तथ्यों पर अवलंबित उनका कल्पित रूप है, पूरी कथा के बारे में भी यही बात सही माननी चाहिए।

गुजराती-बर्मी अंतर्विवाह, जेरबादी पुराण, दंगे, फुंगियों-संबंधी बातें, ब्रह्मीजनों के प्रति धूर्तता, आदि सब ठीक है। आठ दिन के बच्चे को लेकर नवप्रसूता माता और प्लेग के रोगी के मणीपुर के रास्ते को पार करके भारत जीवित पहुंच जाने जैसी घटनाएं घटी हैं, और गोरे साहब का दुख-गौरव-गान भी मैंने एकदम निराधार नहीं गाया है। ऐसी घटनाएं भी हुई हैं।

इन पृष्ठों का लेखन एक-प्रवाह में हुआ है और एक सर्जक के नाते मेरी प्रत्येक कृति के सर्जन के दौरान में तथा उसके बाद देवी शारदा का वरद हस्त जो सुखानुभूति मुझे देता है, वह इस बार उसने मुझे मुट्ठी भरके नहीं, बल्कि दोनों हाथ भर-भरकर दी है। इस पुस्तक को मैंने संतोष का घूंट भरकर समाप्त किया है।

फिर भी, लोभी पाठक, आप तो यह कहे बिना रहनेवाले नहीं कि बाद में शारदू-रतुभाई का गंठजोड़ा क्यों नहीं कराया ? उस भतीजी तारा का क्या हुआ ? शिव, मा-हुला, निम्या, छो-त्वे—इन सबको बीच में ही लटकते क्यों छोड़ दिया ? अरे, सेठ रामजी-शांतिदास की जुगल-जोड़ी को पहाड़ों के बीच हजारों रुपयों के नोटों के बावजूद "पानी-पानी" चिल्लाते तड़पते मरते क्यों नहीं दिखाया ?

भई, इसका कारण यह है कि मैं विश्व का विधाता नहीं हूं। स्वयं विधात्री भी बेचारी हमारे जीवन की कैसी अधूरी आकृति छोड़कर छू हो जाती है !

—झवेरचंद मेघाणी

प्रभु पधारे

प्रभु पधारे

: १ :

डॉक्टर गौतम अपने मकान के बरामदे में खड़े उल्लासपूर्ण दृष्टि से उस शहर की शोभा देख रहे थे। थोड़ी देर बाद उन्होंने भीतर की ओर मुंह करके धीमी आवाज में पुकारा, "ओ हथिनी, जरा जल्दी से यहां आना।"

उनकी पुकार के उत्तर मे भीतर का दर्वाजा खोल, जो बाहर आई, वह सचमुच मानव-रूपी हथिनी ही थी। भरा हुआ पुष्ट शरीर और हाथी की सूडों की तरह दोनों ओर झूलते हुए दो हाथ। वह उनकी पत्नी हेमकुंवर थी। पति ने उसे अपने पास खड़ा करके वहां से नीचे की सड़कों और गलियों का दृश्य दिखलाया। स्वच्छ निर्मल पानी, महकती हुई धरती और आनंद मे मग्न मानव-प्राणी की युगल-क्रीड़ा की धूम मची हुई थी।

आज का दिन सारे बर्मा देश में 'तघुला' के उत्सव का दिन था। तघुला नये साल के पहले महीने चैत्र मे वरुण देवता का आह्वान-पर्व है। पानी ही इस पर्व की वाणी है। बर्मी लोग पानी में शराबोर होकर, पानी के द्वारा ही जल-देवता का आह्वान करते हैं—"च्वावा फया ! च्वावा।" (—पधारो, देव पधारो !)

पिछली सांझ तक जिन पढाउं वृक्षों[1] *की टहनियां बिलकुल नंगी* और पुष्प-विहीन थी, वे मानों रातोंरात किसी वनदेवी का शुभ और मंगलमय स्पर्श पाकर पीले रंग के छोटे सुगंधित फूलों से लद गई थीं। दो करोड़

---

[1] एक प्रकार का वृक्ष, जिसे 'तभाऊं' भी कहते हैं।

लोगों द्वारा निश्चित किये हुए इस उत्सव में योगदान करने के लिए पढाऊं के इन फूलों का यों रातोंरात खिल उठना एक रहस्य ही था; परंतु उत्सव के इस दिन मनुष्य और प्रकृति का यह सहयोग वर्षों से इस देश की स्वाभाविक घटना बन गई थी।

हरेक घर के आगे पानी के बड़े-बड़े बर्तन रखे हुए थे। चैत्र महीने में पानी की तंगी होते हुए भी नगरपालिका की यह हिम्मत न हुई कि आज के उत्सव के लिए पानी देने से इन्कार कर दे। लोगों ने घर के अंदर के नलों में नलियां लगाकर उन्हें बाहर रखे बर्तनों में लाकर छोड़ दिया था। बर्मी स्त्रियां बाल्टियों में पानी भरे खड़ी प्रतीक्षा कर रही थीं। उनकी कमर में लिपटी हुई रंग-बिरंगी रेशमी लुंगियां उनकी सागौन जैसी सीधी देह को सुशोभित कर रही थीं। वे लुंगियां बिलकुल नई थीं और उनमें सलवट का कहीं नाम-निशान तक न था। मलमल की एंजी[1] के नीचे उनके सपाट वक्षस्थल धड़क रहे थे। कपाल से ऊपर की ओर ओंछे हुए केशों के सढोंक[2] उन्होंने अपने सिरों पर छाते या टोपी की आकृति में बांध रखे थे। उन सढोंक पर पढाऊं के छोटे-छोटे पीले फूल गूंथे गये थे। बर्मी स्त्रियों के अलावा और कहीं ऐसी सजधज मिलना दुश्वार है। उनमें से किसी-किसीके हाथ में केले के पत्तों की मुड़ी हुई लंबी चुरुटें सुलग रही थीं।

लोगों के झुण्ड-पर-झुण्ड चले आ रहे थे और आवाजें सुनाई दे रही थीं, "नंगो प्येवा ! नंगो प्येवा !" (—पानी छिड़को, हमपर पानी छिड़को।)

दूर-दूर से पानी के थपेड़ों की और छपाछप की आवाजें सुनाई दे रही थीं। सामने की ओर से एक-एक, दो-दो मंजिल ऊंचे लकड़ी के बने विराटकाय ढांऊ[3], अगन-बोटें और ऐसी ही दूसरी कई आकृतियां आती दीख पड़ रही थीं।

ये सब आकृतियां लकड़ी की बनी थीं और मोटर और मोटर-लारियों

---

[1] कुर्तियां [2] वेणी गूंथने का एक प्रकार, जिसमें सिर के केश पीछे एक कलापूर्ण गांठ में बांध लिये जाते हैं। [3] मोर

पर रखी हुई थीं। इनके अंदर बर्मी युवक खड़े थे। ढोल और मगन-बोटों के अंदर से तंतुवाद्यों के सामूहिक संगीत की स्वर-लहरियां निकलकर चारों ओर फैल रही थीं। पुरुष खुले हुए कण्ठस्वरों में इंद्र का कीर्तिगान कर रहे थे। पोशाक उन सबकी एक-सी थी। गली-गली और घर-घर से छिड़के जानेवाले स्वच्छ निर्मल पानी से वे तर हो रहे थे। भीगने से बचे रह गये थे सिर्फ उनके सिर, क्योंकि उन्होंने अपने सिरों में रबर की टोपियां पहन रखी थीं।

एक के बाद एक जुलूस के वाहन निकलते जा रहे थे और मार्ग के दोनों ओर खड़ा स्त्री-समुदाय स्वच्छ और निर्मल पानी उनमें खड़े लोगों पर छिड़कता जा रहा था। कभी-कभी वाहन में का कोई युवक अपनी वीरता का प्रदर्शन करने के लिए उसमें से नीचे आ कूदता था और किसी असावधान युवती के हाथ में से बालटी छीन स्त्रियों पर पानी की वर्षा कर 'इरापो' कहता हुआ लपककर फिर वाहन पर सवार हो जाता था। पैदल चलनेवालों की यहां खैरियत नहीं थी।

थोड़ी देर में सड़कों और राजमार्गों पर पानी की नदियां बह चलीं। आज का दिन राष्ट्रीय त्योहार का दिन था। आम छुट्टी थी। बाजार भी बंद थे। सारे शहर पर पानी का राज था। आज के दिन सरकार का शासन नहीं था। शासन था इंद्रदेवता का, और सिर्फ बर्मा देश की प्रकृति की विशेष देन पढाकं के फूलों का और लययुक्त मधुर लोक-संगीत का, और शासन था 'नगो प्येबा ! नंगो प्येबा ! इरापो ! इरापो !' जैसे नारी-कण्ठ के स्नेहसिक्त मधुर स्वरों का।

आज का त्योहार किसी जाति-विशेष या सम्प्रदाय-विशेष का त्योहार नहीं था और न वह किसी एक वर्ग या एक फिरके का था। अभी तक बर्मी जनता फिरकों और वर्गों में विभक्त नहीं हुई। वह तो था समस्त राष्ट्र का, बर्मा देश में बसनेवाले सभी लोगों—देशी और परदेशियों—का समान रूप से राष्ट्रीय त्योहार। उस जुलूस में बर्मी लोगों की गाड़ियां थीं और पीले चीनियों की भी गाड़ियां थीं। लंकावासी और जापानी भी उसमें सम्मिलित थे। सूदखोर और माल-मता गिरवी रखने का धंधा करनेवाले आबनूस की तरह काले चेट्टियार भी उनमें आ मिले थे। इतना ही नहीं,

आज के मंगलमय दिन तो मुस्लिम पिता और वर्मी माता के संयोग से उत्पन्न वहां की वर्णसंकर जेरबादी जाति भी अपने लंबे समय के बैर-भाव को भुलाकर, आपसी ईर्ष्या-द्वेष को छोड़कर, झुण्ड-की-झुण्ड राष्ट्रीय उत्सव में आ सम्मिलित हुई थी और सबके स्वरों में अपना स्वर मिला कर पुकार रही थी—"पानी छिड़को ! हमपर भी पानी छिड़को। हम भी पानी की मार खाने निकले हैं। हमें भिगोओ, हमपर भी पानी छिड़को, पानी छिड़को।"

"हां-हां, जरा उधर तो देखना उस वर्मी स्त्री को।" डॉक्टर नौतम ने अपनी पत्नी हेमकुंवर का ध्यान उस ओर आकर्षित करने के इरादे से उसके कंधे पर हाथ रखते हुए कहा। उधर नीचे सड़क पार करती हुई एक वर्मी महिला पुरुषों की इकट्ठी आठ-दस बालटियों के नीचे शांति-पूर्वक अपना सिर झुकाये वरुण-स्नान कर रही थी। उसे अपने शरीर पर के नये रेशमी वस्त्रों के भीग जाने का तनिक भी मलाल नहीं था। वह प्रसन्न-मुद्रा से वहीं बीच सड़क पर खड़ी अपनी बिखरी हुई वेणी में से रत्नजटित भीं[1] निकालकर अपने लंबे बालों को संवार रही थी।

"तुम भी क्या पागल हुए हो !" हेमकुंवर ने अपने हाथी जैसे शरीर को धीरे-से हिलाकर डॉक्टर का हाथ कंधे पर से हटा दिया और कहा, "बचपन में कभी होली खेले थे या नहीं ?"

"अम्मां री !" थोड़ी ही देर बाद उनकी पत्नी चौंककर उछल पड़ी। वह सिर से पैर तक पानी में भीग चुकी थी। हुआ यह कि डॉक्टर नौतम उसे वहीं छोड़ चुपके से घर में गये और भीतर से पानी की एक भरी हुई बालटी लाकर उसे अपनी पत्नी पर औंधा दिया।

"मुझपर क्या चुपके से पानी डाल रहे हो ? बहादुर हो तो नीचे उतरो और जाओ उन वर्मी स्त्रियों के बीच में पानी की मार खाने। देखूं मैं भी जरा !"

इधर पत्नी ये शब्द कह रही थी, उधर चारों ओर रास्तों

---

[1] कंघी

पर से पानी के थपेड़ों की आवाजें आ रही थीं। पानी के थपेड़ों की उस मार के नीचे बड़े-बड़े जवांमर्द भी दहल उठते थे।

"जाऊं ?"

"हां-हां, डॉक्टर !" बगल के घर से दूसरे गुजरातियों ने प्रसन्नता से नाचते हुए कहा, "यहां की तो यह प्रथा ही है। हिंदुस्तानी भी इसमें शरीक होते हैं। हम तो गांवों में रहने पर बिलानागा शरीक हो जाते हैं। निकालो मोटर ! सारे शहर का चक्कर लगाया जाय।"

"नहीं भैया, मोटर तो बिगड़ जायगी।"

"बिगड़ जाने दो। मोटर के लोभ में जिंदगी का मजा क्यों खोते हो ?" हेमकुंवर ने हंसकर कहा।

"लेकिन इन लोगों के हाथ के पानी की मार सह नहीं सकोगे, डॉक्टर !" युवक पड़ोसी ने कहा।

"बस, छुई-मुई-सी औरतों के हाथ के पानी की मार भी नहीं खा सकोगे ! इतना ही है काठियावाड़ियों का पानी ?" हेमकुंवर ने व्यंग्य करते हुए कहा।

"वाह, यह भी कोई बात हुई ! निकालो मेरी मोटर।" डॉक्टर नौतम ने जोश में आकर कहा।

"लो, चढ़ गया न जोश ?" हेमकुंवर ने तालियां बजाते हुए कहा। उसके हाथ की चूड़ियां टकराकर खनखना उठीं।

उधर लोगों ने कछौटे बांधे। टेलीफोन की घंटियां बजीं। कितनी ही गुजराती पेढ़ियों में से मोटर और मोटर-ट्रकें निकल आईं। गुजरातियों ने भी आज के राष्ट्रीय उत्सव में अपनी आवाज मिला दी, "नंगो प्येवा ! नंगो प्येवा !"

गुजराती युवकों को भी बर्मी युवतियों ने पानी से खूब खबर ली। उन्हें अच्छी तरह भिगोया। दोपहर तक उत्सव के जुलूस में घूमते हुए डॉक्टर नौतम को इस बात का तो एक बार भी खयाल न आया कि वह अपने देश से दूर किसी पराये देश में अभी बिलकुल नये-नये आये हैं। सांझ होने को आई। बर्मी घरों के सामने बूढ़े स्त्री-पुरुष चटाइयां बिछाकर हाथ-हाथभर लंबी केल के पत्तों की मुड़ी हुई

हुए इस राष्ट्रीय उत्सव को देखने आ बैठे। उनकी आंखों से प्रेम और अमृत वरस रहा था। अपने देश की कुमारिकाओं को परदेशी युवकों के साथ जलक्रीड़ा करते हुए देखकर भी उनके दिलों में कोई अन्यथा भाव पैदा नहीं हो रहा था। उन्हें वेहद खुशी हो रही थी और खासकर जव डॉक्टर नौतम आदि गुजरातियों की गाड़ी निकलती तो उनकी प्रसन्नता दूनी हो जाती थी और वे आनंदित होकर कहते थे, "फया लारे ! वावू लारे !" (—प्रभु पधारे। गुजराती वावू लोग पधारे !) ञावा वावू ! लावारो वावू ले !" (—पधारो गुर्जर जन। प्यारे वावू लोगो, स्वागत है तुम्हारा।)

वर्मी लोग अपनी भापा में 'वावू' शब्द का प्रयोग गुजरातियों के लिए सम्मान-सूचक संवोधन के रूप में करते हैं और जव उस वावू शब्द के अंत में 'ले' का मधुर मिश्रण हो जाता है तो समझना चाहिए कि वोलनेवाले के हृदय में प्रेम का दरिया लहरा रहा है। जहां वर्मी लोग अन्य सव हिंदुस्तानियों के लिए कलारे[1] जैसे तुच्छ शब्द क प्रयोग करते हैं, वहां 'वावू' या 'वावूले' जैसे सम्मान-सूचक शब्द व प्रयोग केवल गुजरातियों के लिए ही किया जाता है।

एक घर के आगे नवोढ़ाओं और कुमारिकाओं का एक झुण्ड ख था और वरामदे में एक प्रौढ़ा स्त्री खड़ी हुई थी। डॉक्टर नौतम देखते ही उस प्रौढ़ा स्त्री की छाती जोरों से धड़कने लगी। वह से मोटर के पास आई और पूछा, "तुम कौन हो ? क्या तुम यहां ही-नये आये हो ?"

डॉक्टर नौतम वर्मी भापा नहीं जानते थे। रतुभाई नाम के साथी ने उस स्त्री को उत्तर दिया, "हां, ढो-स्वे, नये ही आ डॉक्टर हैं।"

ढो-स्वे नाम की उस प्रौढ़ा ने कहा, "तुम ! तुम अभी त के-वैसे ही हो ?"

प्रौढ़ा के ये उद्गार रहस्यपूर्ण और अगम्य थे। रतुभा

1 समुद्र पार से आनेवाला परदेशी।

पूरे एक वर्ष से वर्मी भाषा जानता था, इन शब्दों का अर्थ न समझ सका। वह उस प्रौढ़ा को पहचानता था। उसने पूछा, "डो-स्वे, आप कहना क्या चाहती हैं ?"

उस प्रौढ़ा ने अपने भावों को संयत करते हुए धीरे से पूछा, "तुम्हारे पिता यहां कभी रहे थे ?"

"जीहां, मेरे जन्म से पहले।" डॉक्टर नौतम ने रतुभाई की मार्फत उत्तर देते हुए डो-स्वे को एक कुतूहलपूर्ण दृष्टि से देखा।

"तू उन्हींका पुत्र है, बाबूले। हूबहू उनके जैसा। वह कहां हैं ?"

"वह तो गुजर गये !"

"मौऊं त्वारे ! (—गुजर गये।) ठहरना, लड़कियो !" उसने पानी भरकर तैयार खड़ी हुई युवतियों से कहा, "यह फूल के समान कोमल है। इसपर धीरे-धीरे पानी डालना। पानी के तेज थपेड़ों को यह सह नहीं सकेगा।"

फिर उसने एक बालटी में से दोनों हाथ की अजलि में पानी भर कर नौतम के सिर पर अभिषेक किया और कहा, "तेरे पिता मेरी मा की दुकान पर थे। तू कहां रहता है ?"

डॉक्टर नौतम से उनका पता-ठिकाना पूछा और एक बार उनके सिर पर स्नेहपूर्वक हाथ फिराकर डो-स्वे ने तब कहीं मोटर जाने दी।

लेकिन दूसरे ही क्षण उसने फिर मोटर रोकने के लिए कहा और दौड़ी हुई घर में जाकर बेत की एक डलिया में फूल भर लाई और उन्हें मोटर के ऊपर बिखेर दिया।

विदा लेती हुई मोटर में बैठा डॉक्टर नौतम तो आश्चर्य-चकित रह गये। इस वर्मी स्त्री के प्रत्येक शब्द में से उन्हें किसी निगूढ मातृत्व की कोमल और स्नेहपूर्ण ध्वनि आती हुई सुनाई दे रही थी। उन्हें याद हो आया अपने जीवन के दसवें वर्ष में, देश के घर में, पिता के मुंह से सुना हुआ वह वर्मी गीत, जिसका भाव कुछ इस प्रकार था :

"हे बाबूजी, तुम जल्दी आना। मैं अकेली रह नहीं सकती।"

लेकिन पिता ने कभी यह भाव बतलाया नहीं था।

'यह दो-स्वे कभी यहां सराफे की दुकान करती थी। आज तो
री खत्म होगई है। इसके भाई का नाम है समासान थारावाडी-
ा।" रतुभाई ने कहा।

"यह समासान थारावाडी-वाला कौन है?"

"समासान ने १९२९-३० में थारावाडी जिले में सरकार के विरुद्ध
क जबर्दस्त विद्रोह किया था। उसके विद्रोह ने वहां की सरकारी
यवस्था को तहस-नहस कर डाला था। एक बड़ी फौज भी उसके विद्रोह
को दबाने में असमर्थ हुई थी।"

"अब वह कहां है?"

"सुनते हैं, चीन की सीमा पर कहीं गोली खाकर मर गया।"

"यह दो-स्वे क्या करती है?"

"रंगूनवाले हमारे शांतिदास सेठ ने इस ग़रीब का दिवाला निकाल
दिया। सोना-चांदी सबपर हाथ साफ कर दिया। अब तो बाजार में एक
छोटी-सी दुकान करती है और उसके सिवा अपनी जमीन की देखभाल
करती है। तुम्हारे पिता यहां कौन-से साल में थे?"

"सन् १९०८-१० में।"

"ठीक है! उन दिनों संभव है, इसकी मां का धंधा चमकता रहा
हो और तुम्हारे पिताजी उसके यहां नौकरी करते रहे हों।"

"मेरा और पिताजी का चेहरा बिलकुल मिलता-जुलता है। आज
भी उनकी जवानी का फोटो देखकर बहुतों को भ्रम हो जाता है।"

"तभी तो उसने तुम्हें एकदम पहचान लिया।"

घर पहुंचकर डॉक्टर नौतम गंभीर हो गये। वह मन-ही-म
बर्मा में अपने पिता के जवानी के दिनों की कल्पना का ताना-बाना बुन
लगे।

: २ :

पीमना का सघुला-उत्सव समाप्त नहीं हुआ, चलता रहा। वरुण-देवता ने अभी तक जनता की पुकार नहीं सुनी थी। वैशाख-जेठ के अपने कौल-करार अभी तक उसने पूरे नहीं किये थे। आसमान जबतक पानी की एकाध छोटी-मोटी झड़ी न लगादे तबतक उसका एक वर्ष की आबादी का दिया हुआ वादा पूरा हुआ नहीं समझा जाता। मतलब यह कि पानी अभी तक नहीं बरसा था। वृद्धजन और फुगी[1] हाथ में माला लिये निर्जल-निराहार फया और चाऊ[2] में बैठे वरुण की आराधना कर रहे थे। धरती के युवक-युवती जन भूख-प्यास तक भुलाकर पानी-पानी की पुकार मचाते हुए वरुण का आह्वान कर रहे थे।

अंत में इंद्र[3] ने उनकी पुकार सुन ली। उसने धरती को एक वर्ष की आबादी का वचन दिया। वरुण ने धरती के कंधों पर मेघमाला का हलका मलमल-सा पवा[4] ओढाकर नये वर्ष का प्रेम प्रकट किया। इसलिए आज के अंतिम दिन उत्सव में भाग लेनेवाले सभी वर्मी स्त्री-पुरुष शहर से बाहर के तालाब पर गये। खाने-पीने की उन्हें सुध नहीं थी। गीले कपड़े बदलने तक की फुर्सत नहीं थी। वर्मा के युवक पानी के ही जीव हो रहे थे। पानी के कड़े थपेड़ों को सहनेवाला वीर समझा जाता था। अंतिम साझ के इस जल-उत्सव में खरीदे हुए पके चावलों का थोड़ा-सा नाश्ता कर वर्मी युवक फिर से पानी के खेल

---

[1] वर्मा के पुजारी-पुरोहित [2] मंदिर और मठ [3] तझांमीं
[4] दुपट्टा

में लीन हो गये। अंत में दिवस की विदा-वेला में जब ये उत्सव-प्रिय लोग 'इरापो' गाते-बजाते घर की ओर लौटे तो उनमें से कइयों के शरीर शीत के मारे थर-थर कांप रहे थे। उनके गौरवर्ण की कांति धुंधली हो रही थी। महिलाओं के सिरों से पानी टपक रहा था, फिर भी उन्होंने अपनी लटों को कुशलता-पूर्वक संभालकर माथे के ठीक ऊपर बीचों-बीच छतरी-नुमा वेणियों में सजा लिया था, और वेणियों में पढाऊं के छोटे पीत पुष्प नये सिरे से गुंथे जा चुके थे। इस तरह पानी और पुष्पों का यह त्योहार चौथे दिन की सांझ को जाकर पूरा हुआ।

अगले दिन इस शहर में तघुला के शांत और मधुर वातावरण को छिन्न-भिन्न करती हुई एक दूसरी ही तरह की आवाज़ सुनाई दी, "डो बमा इंजीला ! डो बमा इंजीला ! डो बमा इंजीला !"

रंग-बिरंगी रेशमी लुंगियों के बदले सफेद निकर और कमीज पहने युवकों का एक विराट, विकराल समूह उछलता, उफनता और गर्जना करता हुआ शहर के राजमार्ग पर से गुजर रहा था। उनकी हर पुकार में रण-घोष की स्पष्ट ध्वनि थी। उनका वह युद्धघोष ही कंगाल को कुपित और शांत को रौद्ररूप प्रदान करनेवाला था। आवाज़ लगाने वालों की पुतलियां दोनों ओर के मकानों को देखती हुई लाल डोरों के बीच इधर-से-उधर घूमती जाती थीं।

उस जुलूस के अग्रभाग में चलनेवाले युवकों में से एक तो बिलकुल जलता हुआ अंगारा ही था।

"यह क्या मुसीबत है ?" डाक्टर नीतम ने डरकर पूछा।

रतुभाई ने जवाब दिया, "यह है तखीन पार्टी—बर्मा का स्वतंत्रता-प्रेमी राजनैतिक दल। इसका नारा है—'डो बमा !' इसका अर्थ है कि हम बर्मा-वासी हैं, ब्रह्मदेश हमारा है, किसी दूसरे का नहीं। हमें चाहिए अपने देश, ब्रह्मदेश, की संपूर्ण स्वाधीनता।"

"क्या यह नारा हमारे विरुद्ध है ?"

"जिस सीमा तक हमारा 'इन्क़लाब जिन्दाबाद' परदेशियों के विरुद्ध है, उतना ही यह नारा भी हमारे विरुद्ध है। हम उनकी जिन-जिन चीजों पर अपना अधिकार जमा बैठे हैं, ये उन सबकी मुक्ति चाहते हैं।

हमारे देश के मदरासी चेट्टियार इनकी जमीनें दवाये हुए हैं तो गुजराती और मारवाड़ी चावल की मिलों पर कब्जा किये हुए हैं। पंजाबी आदि कुछ दूसरे लोग यहां के जंगलों और लकड़ी के व्यवसाय को अपने अधिकार में लिये हुए हैं। इनके तेल के कुएं भी तो हमारे ही हाथ में हैं।"

"डाक्टरों की स्थिति क्या है ?"

"बस सही-सलामत हैं तो सिर्फ अकेले हिंदुस्तानी डाक्टर ही। यहां बर्मा में बर्मी पुरुष तो डाक्टर हैं ही नहीं। कुछेक बर्मी स्त्रियां इस धंधे को अपना रही हैं; परंतु उनकी बहुतायत नहीं है।"

"तो फिर खुदी से नारे लगायें और मक्ख मारें !" डॉक्टर नौतम ने अपनी पत्नी से कहा, "हम तो अपने चैन से हैं।"

ये बातें हो ही रही थी कि दरवाजे की घण्टी बजी और खुलते हुए दरवाजे के बीच एक प्रौढ़ा स्त्री प्रवेश करती हुई दिखाई दी। आगंतुक दो दिन पहले जुलूस में मिली डो-स्वे थी। 'स्वे'उसका नाम था और 'डो' उसकी उम्र बतलानेवाला आदर-सूचक प्रत्यय। बर्मा में प्रत्येक युवती के नाम के आगे 'मा'[1] और प्रौढ़ा के नाम के आगे 'डो' लगाकर पुकारने की प्रथा है। मा-स्वे का अर्थ हुआ स्वे-बहन या स्वे कुमारी। डो-स्वे को हिंदी में 'स्वे चाची' कह सकते हैं। स्वे बर्मा में सोने को कहते हैं। हिंदी में हम कहेंगे—सोनादेवी या सोना चाची, बर्मी भाषा में उसीको कहेंगे डो-स्वे।

उसको देखते ही डॉक्टर नौतम को एक तो अपने पिता की याद आ गई और दूसरे वह बर्मी भाषा में स्वागत-सत्कार के शब्द नहीं जानता था, इसलिए रतुभाई ने कहा, "क्वावा, डो-स्वे।" (—आइये, स्वे चाची।)

"अरी बेवकूफ, उन्हें नमस्कार तो कर।" डॉक्टर नौतम ने पत्नी से कहा।

बेचारी हेमकुंवर ने जिंदगी में पहली मर्तबा काठियावाड़ से बाहर

---

[1] कुमारी, बहन

व रखा था। फिर वह इस देश को तो साक्षात् कामरूप देश ही समझती थी, जहां की स्त्रियां जादू-टोने के प्रयोग में सिद्धहस्त होती हैं। उसे रात-दिन अपने पति पर जादू-टोना किये जाने का डर बना रहता था। इसपर वह देश में अपनी सास के मुंह से कुछ ऐसा भी सुन चुकी थी कि उसके ससुर इसी ब्रह्मदेश में किसी वर्मी स्त्री के घर बकरा या तोता बनते-बनते भाग्य से ही बचकर देश लौट सके थे। उसपर तुर्रा यह कि उसका पति सुंदर था। फिर तो उसकी मुसीबत के बारे में पूछना ही क्या ! रात के समय एक औरत का उनके घर आना ही उसे घबरा देने के लिए काफी था और वह सचमुच ही घबरा गई थी।

लेकिन ढो-स्वे खुद ही हेमकुंवर के पास गई और बड़े मधुर स्वर में पूछने लगी, "धीमा कांउडे महोला ? (—तुम्हें यहां अच्छा तो लगता है न ?) को एँ लावा (—मेरे घर आओगी···) तो मैं वर्मी भाषा सिखलाऊंगी। देखो, कोई अपने घर आये तो उससे यों कहना चाहिए— लावा (आइये) थांइवा (बैठिये), सावा (खाइये)। अच्छा, तुम मेरे घर आओगी न ?"

मुंह से फूल की तरह झरनेवाले वर्मी शब्दों का रतुभाई अर्थ करता जाता था। हेमकुंवर की घबराहट निरंतर बढ़ती जाती थी।

रतुभाई ने मजाक में कहा, "और ढो-स्वे, साथ-ही-साथ इसे यह भी तो बतलाओ कि किसीपर नाराज होने पर स्त्री क्या कहती है।"

"चलो, हटो जी ! ऐसी बात भी कहीं सिखलाई जाती होगी ?"

"आप भूल गई होंगी ढो-स्वे, परंतु मुझे अच्छी तरह याद है। उस बार हमारे शांतिदास सेठ के मुनीम ने आपकी लड़की के हाथ एक गिन्नी रखते हुए अशोभनीय वर्ताव किया था तो आपने क कहा था ?"

ढो-स्वे तुरंत ही बोल उठी, "ऐसे समय यों कहा जाता है—तैं बाने (ज्यादा बात मत कर) घोखा म्यामे (क्यों आफत मोल लेता फना छामे (जूते से मारूंगी।)" अंतिम वाक्य बोलते समय उस स्त्री ने अपने पांव से रेशमी चप्पल निकालने का अभिनय किया।

"देखा हेमकुंवर बहन ! यह है यहां की नारियों का दर्प औ

की श्रद्धा ! दोनों ही साथ-साथ ।" रतुभाई ने समझाया ।

"आजकल तुम दिखलाई नहीं पड़ते, बाबू ?" चाची ने रतुभाई से पूछा ।

"चाची, इन दिनों मैं यांगंऊ[1] रहता हूं ।" रतुभाई ने पुराना परिचय ताजा करते हुए कहा, "और मुझे यह जानकर बहुत ही दुःख है कि तुम इन दिनों रुपए-पैसों से तंग हो ।"

"वह तो कुछ नहीं, भैया ! पैसा फया युत्वारे, फया पेमे (पैसा था सो प्रभुजी ले गये और वही पीछे देंगे) । कैसा मयीवू बाबुले (उसकी कुछ परवा नहीं, बाबू ।) लेकिन अब मैं वह काम बतलाऊं, जिसके लिए इस समय यहां आई हूं । डॉक्टरबाबू, मेरी लड़की को सख्त जुकाम हो रहा है । अभी चल सकोगे उसे देखने ? तुमसे मिलने के बाद अब मैं किसी दूसरे डॉक्टर को बुलाना नहीं चाहती । वैसे गोपालस्वामी का बड़ा नाम है और बैनरजीबाबू भी हैं, लेकिन मैं किसीको बुलाना नहीं चाहती । मेरे मन तो तुम आ गये सो फया लारे (देवता आ गये ।) रतुबाबू तुम भी चलोगे न, नहीं तो डॉक्टरबाबू को हमारी बात समझावेगा कौन ?"

डॉक्टर गौतम ने हेमकुंवर के मन का समाधान किये बिना ही अपनी मोटर निकालने का आदेश दिया और ढो-स्वे के घर पहुंचने तक रास्ते भर वह इन विचारों में लीन रहे कि मेरी बगल में बैठी हुई यह नारी आज से तीस वर्ष पूर्व अपने यौवन-काल में कितनी सुंदर और आकर्षक रही होगी ! इसकी मोहिनी और यौवन की ज्वाला से कांपकर ही क्या पिता को एकाएक इस देश का परित्याग करना पड़ा था ? आज भी इस नारी की देह से तनाखा[2] की सुगंध आ रही थी । बर्मी नारी का काम बिना तनाखा के चल ही नहीं सकता ।

जमीन से कुछ ऊंचा, लकड़ी के पायों पर लकड़ी का ही बना, एक मकान था । मकान के चारों ओर एक छोटी-सी वाटिका थी । ढो-स्वे जिस जमाने में मा-स्वे थी उस जमाने के वैभव के अवशेष रूप में दोनों

[1] रंगून [2] चंदन का लेप

चीजें बची रह गई थीं—फूलों से महकती हुई यह फुलवाड़ी और काठ की बनी यह छोटी-सी सुंदर अटारी। डो-स्वे को ये दोनों चीजें अपनी मां से विरासत में मिली थीं। बर्मा में सम्पत्ति का उत्तराधिकारी पुत्र नहीं, पुत्री होती है।

पिता अपने यौवन-काल में कभी चांदनी रात में यहां कहीं बैठे होंगे! कौन जानता है इस बात को? शायद डो-स्वे का हृदय उन संस्मरणों का संग्रह किये हुए हो।

अंदर बरामदे में वृद्ध होते हुए भी दीखने में एक अधेड़ जैसा पुरुष बेत की चटाई पर शांतिपूर्वक बैठा चुरुट पी रहा था। आसानी से उत्तेजित हो जाने पर भी चारों ओर के फयाओं में बुद्धदेव की ध्यान-मग्न, स्वस्थ, शांत और धीर-गंभीर प्रतिमाओं का ध्यान करनेवाले बर्मी पुरुषों का वह व्यक्ति एक नमूना था। उसने सिर्फ इतना ही कहा, "लाबा।" (—आइये।)

बरामदे में से बीमार के कमरे[1] में प्रवेश करते समय डॉक्टर गौतम उसके दरवाजे पर खड़े हुए युवक को देखकर चौंक उठे। अभी दो घंटे पहले ही उसे देख चुके थे। अभी तो उसने अपने कपड़े भी नहीं बदले थे। वही सफेद निकर और कमीज। लगता था जैसे अभी गर्ज उठेगा—'डो बमा इंजीला!' सो तो ठीक है; परंतु कहीं 'धा' उठाकर हमला न कर बैठे!

'धा' या 'धाऊ' बर्मा का एक बहुत ही डरावना शब्द है। यह एक हाथभर की लंबी छुरी होती है। डॉक्टर गौतम को उसके हितैषियों ने सावधान किया था कि इस देश में समय-असमय समझ-बूझकर रोगियों को देखने जाना चाहिए। बर्मी को धा उठाते देर नहीं लगती। यह धा सर्व-व्यापिनी है। जेबकतरे की जेब में, मजदूर की बगल में, स्त्रियों की ऐंजी में, और तो और पुजारी-पुरोहित फुंगियों के पीले उत्तरीय के नीचे भी यह कातिल धा छिपी पड़ी रहती है। तो फिर 'डो बमा' के नारे लगाने

[1] बर्मी घरों में कमरे साधारण लकड़ी के काम-चलाऊ पार्टीशन भर होते हैं।

वाला यह पहलवान धा के बिना रह ही कैसे सकता है ?

डॉक्टर को क्षण भर के लिए हिंदुस्तान का क्रांतिकारी नारा 'इन्क़लाब जिन्दाबाद' याद आ गया और उसके साथ-ही-साथ 'बम' का खयाल आया। विदेशी इस नारे और बम से कितना घबराते हैं ! इस 'दो बगा' और 'धा' से उसे भी उतना ही डर लगता है।

"रास्ता दे, मांऊ-माऊ।" माता ने पुत्र को शांति से आदेश दिया। वह एक ओर को खिसक गया और बहुत ही विनम्रता से उसने डॉक्टर का अभिवादन किया। लड़के का नाम 'मांऊ-माऊ' था। वह जबतक जवान है, उसके नाम के आगे 'माऊ' प्रत्यय लगता रहेगा। प्रौढ़ होते ही उसे 'ऊ' प्रत्यय के द्वारा संबोधित किया जायगा—ऊ-मांऊ। 'ऊ' का अर्थ होता है 'चाचा' या 'बाबा'।'

"मा-नीम्या ! मा-नीम्या !" माता बुखार में बेहोश पड़ी अपनी नीम्या को पुकार-पुकारकर जगाने लगी। वह कह रही थी, "डॉक्टर बाबू लारे, फया लारे, आखें खोल बेटी। देख, अभी तेरा बुखार उतर जायगा।"

दिन में तीन-तीन बार नहा-धोकर शरीर को स्वच्छ रखने और शान से सिर का मड़ोंऊ ओढ़नेवाली युवती बुखार में बेसुध होते हुए भी रत्नाभरण पहने हुए थी। बर्मी स्त्री भूखी रह लेगी, दो जून चावल-मछली न मिले तो वह चला लेगी, परंतु हीरे-जवाहरातों के बिना वह घड़ी भर भी नहीं रह सकेगी। उसके गले में लेढो[1], कान में नधा[2], कलाइयों में लेकाऊ[3] और वेणी में भी[4]। सभी आभूषण रत्न-जटित होंगे।

जुकाम खूब जोरों का था। क्या हुआ होगा ?

"यह सब तघुला का प्रताप है।" रतुभाई ने डॉक्टर से कहा।

"रतुभाई ने सच ही कहा है।" सुनकर ढो-स्वे बोल उठी, "चार दिन तो पानी में तराबोर रही और एक रात तालाब पर खुले में बिता आई है।"

---

[1] हार [2] बूंदे [3] चूड़ियां [4] कंघी

"चिंता करने की कोई बात नहीं है।" डॉक्टर ने कहा और तत्का-
ल उपचार के लिए सुई आदि लगाकर बाकी दवा लेने के लिए
अस्पताल आने को कहा।

"मांऊ-मांऊ !" मां ने बेटे को आदेश दिया, "बाबू के साथ चला
जा !"

बाप रे ! यह 'डो बन्ना' वाला मांऊ-मांऊ साथ चलेगा !

"कोई चिंता नहीं, डॉक्टर-साहब !" मित्र की घबराहट का कारण
समझते हुए रतुभाई ने कहा, "यह सब मारे-बाजी हमारे यहां के 'इन्कलाब
जिन्दाबाद' की ही तरह यहां सब जिन्दगी भर है। कल सवेरे यही
हजरत विदेशी कोट और [illegible] सेठ की दुकान की घड़ी की सोने
की चेन डाले फिरते नजर आएंगे। इसके सिवा मैं भी यहां की कुछ
[illegible]-शालाओं का निरीक्षण कर चुका हूं।"

[illegible] प्रथा के अनुसार झुक-झुककर अतिथि के लिए रास्ता बनाती
[illegible] मोटर तक बाहर आई और बाहर झुककर उसने [illegible]
[illegible] का प्रयोग किया।
[illegible]

"सोना चाची, यह क्या कह रही हैं ?" डॉक्टर नौतम ने पूछा।

"मनसुख गरीब ने यहां की एक वर्मी स्त्री से शादी क्या करली, मुसीबत में फंस गया। वर्मी पत्नी से उसकी सत्रह वर्ष की एक लड़की है। कोई गुजराती उसके साथ शादी करने को तैयार नहीं होता।"

"ओह, कितना भला है बेचारा मनसुखबाबू! और उसकी पत्नी मा-तै भी कितनी भली है! और उन दोनों की लड़की!" चाची अफसोस करने लगीं, "बावले! किसी गुजराती बाबू में हिम्मत नहीं है और जो हिम्मत करते हैं, उनमें कुछ भी दम नहीं है। क्या मुसीबत है बेचारे बच्चों की! और मां-बाप ने ही ऐसा कौन-सा पाप किया? तुम्हारे पिता ने समझदारी से काम लिया। अच्छा ही हुआ कि चले गये! परंतु अब तुम फीस..."

डॉक्टर नौतम ने मोटर चालू करते-करते कहा, "नहीं चाची, फीस की बात मुंह से मत निकालो। फया-सु[1]!" अपने पिता के संबंध में कहा हुआ इस महिला का प्रत्येक शब्द उसके हृदय में अंकित हो रहा था।

पालतू कबूतर की तरह सीना फुलाये मांऊ-मांऊ मोटर में बैठा था। एक गली के बीचों-बीच रास्ता रोके कुछ लोगों का एक झुण्ड हुल्लड़ मचा रहा था। उनके बीच में से मोटर निकाल ले जाना बड़ा मुश्किल हो रहा था। डॉक्टर नौतम गीयर पर गीयर बदल रहे थे, लगातार भौंपू बजा रहे थे, परंतु भीड़ टस-से-मस न होती थी। उन्हें रास्ता रोककर खड़े रहने में ही मजा आ रहा था। भीड़ में से थोड़ी-थोड़ी गुर्राने की आवाज भी सुनाई दे रही थी।

"हुं-ह!" माऊ-मांऊ उपेक्षा से हँसा और अंग्रेजी में बोला, "दैट इज़ आवर मेन प्रोबलम।"(—यही है हमारी मुख्य समस्या।)

"वाह, अंग्रेजी भी जानते हो?" डॉक्टर नौतम ने प्रसन्न होकर कहा, "क्या है यह समस्या?"

"इन्हें देखते हैं न आप?"

"कौन हैं ये?"

---

[1] भगवान की सौगंध

"हमारे दुश्मन, हमारे हितों के दुश्मन—जेरबादी।"

उन लोगों का लिबास बर्मी लोगों का-सा ही था। वही लुंगी-एंजी, ये पर उसी ढंग का गांऊ-बांऊ[1]? और वही भाषा। फिर भी यह युवक इन्हें अपना दुश्मन क्यों कह रहा है? कारण क्या है?

"जरा इनकी नाक की ओर देखिये और फिर हमारी नाक देखिये। हमारी नाक चपटी और इनकी लंबी है। इनके चेहरों की बनावट में भी फर्क है। ये लोग हमारे नहीं हैं। हम इनके नहीं हैं। ये हमारे देश का कलंक और हमारी प्रजा का पाप हैं।" मांऊ-मांऊ धारा-प्रवाह अंग्रेजी में बोल रहा था।

उत्तेजित मांऊ-मांऊ को अस्पताल में ले जाकर दवा बनाते और बातचीत का सिलसिला आगे बढ़ाते हुए डॉक्टर ने पूछा, "ये तुम्हारा कलंक क्यों कर हैं?"

"ये जेरबादी हिंदुस्तान के मुसलमान आदमियों और हमारी बर्मी स्त्रियों की जारज संतान हैं। ये वर्ण-संकर हैं।"

"लेकिन बर्मी स्त्री तो जातियों में देशी-परदेशी या ऊंच-नीच के किसी भी भेद-भाव के बिना विवाह कर लेती है। वह तो जापानियों, चीनियों, गुजरातियों, पंजाबियों और अंग्रेजों तक का समान रूप से वरण करती है।"

"इसीलिए तो मैं कह रहा हूं, साहब, कि दूसरी जातियों के सा हुए विवाहों का जो परिणाम नहीं हुआ, वह अनिष्टकर परिण हुआ है एकमात्र इसीमें से! इन लोगों को यहां दूसरा हिंदुस्त बनाना है।"

"यानी?"

"यानी यह कि ये लोग यहां बर्मा में हिंदुस्तान के हिंदू-मु झगड़ों और दो जातियों के भेद-भाव की बर्मी आवृत्ति चाहते हैं।"

"सो किसलिए?"

"महज धर्म के लिए। उनका धर्म जुदा है। जुदा है तो स

---

[1] सिर पर बांधने का रूमाल।

वह हमारे धर्म का विरोधी धर्म बन गया। आप अखबार पढ़ते हैं या नहीं ?"

"अंग्रेजी अखबार पढ़ता हूं।"

"बर्मी अखबार पढ़िये तो पता चले कि आज हरएक बर्मी के दिल में कैसी आग धधक रही है। सात बरस पहले किसी धर्मांध जेरबादी ने एक पुस्तक लिखी थी। कोई उसके बारे में जानता भी नहीं था। आज आपके ही देश-वासी किसी भारतीय मुसलमान ने उस पुस्तक को फिर से छपाकर हमारे देश मे प्रचारित किया है। हमारे सारे अखबार उसके खिलाफ रोष प्रकट कर रहे है। हमारे फुंगी चाऊ के हजारों फुंगी उसे पढ़कर क्रोध की ज्वाला मे सुलग उठे हैं।"

"उसमें है क्या ?"

"उसमें है बौद्ध धर्म की निंदा और इस्लाम का प्रतिपादन।"

"लेकिन इस तरह की पुस्तक प्रकाशित कैसे हो गई ?"

"यह तो भगवान जानें। क्या करें और किससे कहें ? धर्म की अवहेलना और फुंगियों की बदनामी ! हमारे फुंगियों को तो आपने देखा ही है ! बिल्कुल आग के अंगारे हैं।"

"हां भाई, सुना है कि वैराग्य के पीत वस्त्रों के नीचे छुरा छुपाए फिरते हैं।"

"बात सच है, डॉक्टर ! बर्मी स्त्रियों की संख्या अधिक होने और लग्न-स्वातंत्र्य की अतिरेकता में से धधक उठी है यह जेरबादी जाति रूपी ज्वाला, जो हमारे राष्ट्र को स्वाहा कर देगी।"

"नहीं भाई, किसी जाति को दोष मत दो। दोष तो है धर्म और राजनीति दोनों में गलत नेतृत्व करनेवाले का।"

"सो होगा, परंतु हमें तो अपने लिए आवश्यक व्यवस्था करनी ही होगी।"

"तो क्या बर्मी स्त्रियों को परदेशियों के साथ विवाह करने से रोकना होगा ?" यह कहते हुए डॉक्टर नीतम ने रतुभाई की ओर एक अर्थ-पूर्ण दृष्टि डाली। रतुभाई अभीतक अविवाहित थे।

"नहीं, यह तो हम कभी नहीं करेंगे। हम बर्मा-वासी विश्व

कट्टर उपासक हैं। हमारी यह उपासना व्यावहारिक है। हम रक्त के विव्यमय मिश्रण के माननेवाले हैं। इसके सिवा हमारे देश की नारी-क्ति प्रेम के मुक्त प्रदेश में वर्ग, वर्ण या जाति के ऊंच-नीच और अमीरी-गरीबी के बंधनों को कभी स्वीकार नहीं करेगी। लेकिन एक बात तो हमें निश्चित करनी होगी और वह यह कि हमारी बहन-बेटी के साथ शादी करने आनेवाले को हम अपने धर्म में दीक्षित करेंगे।"

"क्या इससे तुम्हारी समस्या का हल हो जायगा ?"

"न होगा तो देखा जायगा।"

"ख़ैर, हम लोग फिर कभी निश्चित होकर इस विषय पर बातें करेंगे। तुम जरूर आना।"

उसी समय भीतर की ओर का दरवाजा खोलकर एक स्त्री अंदर आई। डॉक्टर ने उसकी ओर इशारा करते हुए कहा, "मुझसे डरने की जरूरत नहीं। किसी वर्मी स्त्री के साथ शादी करने की बात तो दूर, मजाक भी करूं तो यह मुझे कच्चा ही चबा जायगी। इसकी जबान इतनी धारदार है कि उसके आगे तुम्हारी धा की जरूरत ही नहीं होगी।"

युवक ने उठकर स्त्री का सम्मान किया। वह हेमकुंवर थी। फिर युवक ने मुस्कराकर कहा, "हम वर्मी विवाहित स्त्रियों से मजाक नहीं करते। रही धा, सो उसका आपका डर व्यर्थ है।"

"मैंने तो बहुत-कुछ सुना है।"

"नहीं, वह गलत है। हम धा का उपयोग भी सिर्फ एक ही बार क[illegible] हैं और वह उस समय जब कोई हमारे साथ कली-कमा (दगाबाज[illegible] करे।"

डॉक्टर ने उस सरल हृदय युवक को फिर अपनी ही मोटर [illegible] भेजा और ईश्वर को न मानते हुए भी प्रार्थना की कि हे फया! [illegible] बहन को आराम करना, नहीं तो वह दवाई में विश्वासघात हुआ [illegible] फौरन धा उठाकर दौड़ा आवेगा।

: ३ :

डॉक्टर गौतम प्रथम बार ही बर्मा आये थे, फिर भी उन्होंने अपनी पत्नी को बुला लिया, उसके कई कारण थे। एक तो बर्मा-प्रवासी गुजरातियों ने उन्हें अच्छी प्रेक्टिस चलने के निश्चित वादे पर राजकोट से यहां बुलाया था। दूसरे, उनकी पत्नी हेमकुंवर ने सुन रखा था कि नानी की कहानी का कामरूप देश यही बर्मा है और यहां की कामिनियां जादू-टोने के प्रयोग में सिद्धहस्त होती हैं। इसलिए उसे हर घड़ी यह डर बना रहता था कि उसकी अनुपस्थिति में कहीं कोई बर्मी औरत मंत्र फूंककर पति को जादू के जोर से कुत्ता या बकरा न बना ले। उसने बर्मा आने की जल्दी मचा रखी थी। फिर कोई बाल-बच्चा न होने से ख्याल यह था कि मन लगा तो रहेंगे, नहीं तो लौट जायंगे। इस ख्याल से ही वह बर्मा आये थे।

डॉक्टर गौतम को शुरू से ही एक बात में बड़ी चिढ़ थी। यदि कोई आदमी उसके सामने किसी गांव और उसके निवासियों की निंदा करता और कहता कि यह गांव या देश बुरा है, यहां के निवासी झगड़ालू, कंजूस और दुश्चरित्र हैं तो वह गुस्से से आग-बबूला हो जाता था। वह गुजरात-काठियावाड़ के तीनेक शहरों में रहा था, परंतु उसे तो कहीं भी उस विशिष्ट बदमाशी के दर्शन नहीं हुए। वैसे तो हरएक शहर में जो बुराई या बदमाशी थी, वह सर्वत्र पाई जानेवाली सर्व-सामान्य बदमाशी थी और वहां की भलाई या सुजनता के बारे में भी यह बात उसी रूप में लागू होती थी। इसलि-

उसके सामने अपने ही गांव की निंदा कर हितैषिता प्रकट करनेवालों को वह टके-सा जवाब दे दिया करता था कि देखो भाई, जो धरती हमारा भरण-पोषण करती है और जिसपर हम रैन-बसेरा करते हैं, जिस धरती पर हमारे भोजन में कोई जहर नहीं मिला देता, जहां के पानी में कोई हैजे के जंतु नहीं छोड़ जाता और जो धरती हमारे सोने पर कंपित नहीं हो उठती, वह तो रक्षा करनेवाली माता के समान है। मैं उसकी और उसपर बसनेवालों की निंदा सुनने को तैयार नहीं।

बर्मा आया तो यहां भी उसे वही बात सुनने को मिली ? तथुला-उल्लव के जुलूस में घूम लेने के बाद सोना-चांदी और हीरे-जवाहरात के एक प्रतिष्ठित व्यापारी से ही उसे यह सलाह मिली कि यहां बर्मा में बड़ी सतर्कता से रहने की आवश्यकता है। ये बर्मी लोग हद दर्जे के क्रूर और घातकी होते हैं। विलासी तो अव्वल नंबर के। चरित्र के नाम पर सिफ़र। बेईमानी और झगड़ा करते इन्हें देर नहीं लगती। यह सुनकर प्रकट में तो डॉक्टर गौतम चुप रहा, क्योंकि उसे बर्मा बुलानेवालों में वह व्यापारी अग्रगण्य था, परंतु मन-ही-मन उसे काफी दुःख हुआ। फिर भी उसने इस विचार से मन समझाया कि होगा भाई, अपने किसी कटु अनुभव के आधार पर ही उन्होंने यह चेतावनी दी होगी, क्योंकि यों वह गांधीवाद के उपासक और परोपकारी जीव थे, फिर बर्मा में रहते उन्हें अर्सा भी काफी होगया था। लेकिन उस रतुभाई नामक युवक से आशा है कि इस देश के बारे में कुछ अधिक जानने और समझने को मिलेगा। वह अविवाहित युवक इस देश के संबंध में थोड़ी-बहुत जानकारी रखता था, इसलिए डॉक्टर ने उसीको अपना पथ-प्रदर्शक बनाया और उससे पूछा, "क्यों रतुभाई क्या राय है ? इन लोगों में थोड़ी-बहुत चारित्रिक शिथिलता तो है ही।"

"नहीं डॉक्टरसाहब," रतुभाई ने उत्तर दिया, "यह तो मिस मेयो वाली बात हो गई। जीवन में जितना कुछ स्वाभाविक है, उसे अनैतिक तो कहा नहीं जायगा। बर्मी लोगों के चरित्र के संबंध में जिसे अनैतिक कहा जाता है, वह तो है उनका सहज स्वाभाविक जीवन।"

रोज सांझ होते ही डॉक्टर के मकान के पीछेवाले एक घर से किसी नारी-कंठ से निकले हुए हिंदी गीत की स्वर-लहरियां वर्मा के सायंकालीन शीतल, मधुर और पार्थिव वातावरण में एक दिव्य और स्वर्गिक सौरभ की तरह व्याप्त हो जाती थी। इस गानेवाली के प्रति अपनी सहज उत्कंठा से प्रेरित होकर डॉक्टर ने जब पहले सोने-चांदी के व्यापारी सेठ शांतिदास से उसके बारे में पूछा तो उन्हें उत्तर मिला, "वही तो मैंने कहा, डाक्टरसाहब, कि इन वर्मी औरतों का कोई ठिकाना नहीं। किसी मदरासी मुसलमान का घर आबाद किये हुए हैं और अब जो लड़कियां पैदा हुई हैं, उन्हें यह वर्मी माता रोज न जाने क्या सिखलाया करती है।"

डॉक्टर का इस उत्तर से समाधान नहीं हुआ और उसने रतुभाई से पूछा। रतुभाई ने जो कुछ कहा, उसमें बात तो वही-की-वही थी, परंतु उसका तात्पर्य दूसरा था—"यहां की स्त्रियां विवाह के मामले में बिलकुल स्वतंत्र हैं। उन्हें बचपन से ही शिक्षा दी जाती है और आमतौर पर वे पुरुषों की अपेक्षा ज्यादा पढ़ी-लिखी होती हैं।"

"क्या सब-की-सब?"

"जीहां, सब-की-सब—देहातिनें तक।"

"इतनी ज्यादा पाठशालाएं हैं यहां?"

"जीहां, लेकिन वे सरकारी नहीं, साधुओं की हैं। फुंगिमों के चांऊ में प्रत्येक वर्मी बालक को अनिवार्य रूप से पढ़ना ही पड़ता है। एक भी गांव ऐसा नहीं मिलेगा, जहां फुंगी साधु की पाठशाला न हो। इस स्त्री ने भी अपनी शिक्षा समाप्त करने के बाद माता-पिता या किसी अभिभावक की अनुमति के बिना, स्वेच्छा से, मदरासी मुसलमान के साथ शादी की है। वह पति की तमिल भाषा तो सीख नहीं सकी, घर में हिंदी और वर्मी भाषा की सहायता से काम चलाती है और कभी हिंदुस्तान जाना पड़ा तो वहां दिक्कत न हो, इस खयाल से अब अपनी लड़कियों को हिंदी भाषा सिखला रही है।"

"तुम्हें कैसे पता चला?"

"मैंने ही, जब मैं यहां रहता था, उसके लिए हिंदी-शिक्षक खोज दिया था।"

"क्या पिता अपनी भाषा पढ़ाने के लिए बाध्य नहीं कर सकता ?"

"बाध्य तो बर्मी स्त्री को कोई कभी कर ही नहीं सकता। वह जिसके साथ चाहेगी, शादी करेगी, लेकिन अपने स्वत्व को और स्वाभिमान को कदापि नहीं छोड़ेगी।"

उसी रात लगभग आधीरात के समय समीप ही कहीं भयंकर कोलाहल सुनाई दिया और कोई बार-बार डॉक्टर नौतम के दरवाजे पर की घंटी बजाने लगा। दरवाजा खोलने पर सामने रतुभाई खड़ा था और उसके साथ था एक लहूलुहान आदमी। नीचे लोगों का एक झुंड खड़ा था।

"क्या है ?"

"घा ! घा !" इस खून से सने हुए आदमी ने इन दो शब्दों की रट ही लगा दी।

"यह कौन है ? और कहता क्या है ?"

"तलो, तलो।" उस आदमी ने कहा।

रतुभाई ने डॉक्टर को समझाया—"तलो कहते हैं चीनी को। यह सज्जन चीनी हैं। सामने ही इनकी सोडा-लेमन की फैक्टरी है। इनकी बर्मी स्त्री इनपर घा का वार कर बैठी।"

बर्मी स्त्री पति पर भी घा चला देती है ! डॉक्टर सोच में पड़ गया। रतुभाई ने आगे कहा, "मैंने शाम के वक्त आपसे जो कुछ कहा, वही इस घटना का मूल कारण है। मैंने खिड़की में खड़े रहकर सबकुछ अपनी आंखों देखा और झगड़े का प्रत्येक शब्द अपने कानों सुना है। अधिकांश चीनी यहां आने पर ही शादी करते हैं। इन्होंने भी ऐसा ही किया। पति-पत्नी में किसी बात को लेकर अनबन हो गई। पति उसे धमकाने लगा तो पत्नी ने कहा, 'मैं बर्मी हूं। तू मुझे डरा नहीं सकता !' इन्होंने कहा, 'मैं कुछ तेरे बर्मी पुरुषों जैसा जोरू का गुलाम नहीं हूं।' स्त्री ने कहा, 'खबरदार जो बर्मी पुरुषों को जोरू का गुलाम कहा ! वे मनमौजी छैला हैं, गुलाम नहीं।' इसपर पति ने कहा, 'तो जा फिर किसी

वर्मी के घर में घुस जा।' वह नागिन की तरह ऐंठकर बोली 'अच्छा !' अब पंद्रह वर्षों के बाद तू मुझे जाने को कह रहा है, क्यों ? तेरे साथ शादी करते वक्त मैंने पंच-कर्मों की सौगंध ली थी और तेरे फटे-पुराने कपड़ों की मरम्मत करने का धर्म बजाया, और अब !' वह बिजली की तरह तड़पकर उठी और धा फेंककर मारी, परंतु वह तो बीच में खम्भा आगया और धा उससे टकरा गई, इसलिए इन्हें जरा-सी ही चोट आई, नहीं तो'''।

उस रात से डॉक्टर गौतम के मन में वर्मी लोगों की धा का डर जड़ जमाकर बैठ गया। वह भीतर गया तो हेमकुंवर जागकर उठ बैठी थी। उसने उससे कहा, "लि, अब तुम्हें इस कामरूप देश के जादू-टोने का डर नहीं रह जायगा।"

"क्यों ?"

"क्यों क्या ? धा'''धा'''धा !"

इतना कहकर वह अपनी पत्नी की गोद में मुंह छिपाकर सो गया।

: ४ :

रंगून शहर का वास्तविक नाम रंगून नहीं, यां गंऊ-म्यो है। नाम बिगाड़ने की कला में कुशल जाने किस परदेशी ने कब और क्यों इस यां गंऊ-म्यो को रंगून बना दिया, वह कोई भी क्यों न रहा हो, उसने नाम बिगाड़कर एक बहुत बड़ा पाप किया।

'यां' का अर्थ है विग्रह, 'गंऊ' का अर्थ है समाप्त होना और 'म्यो' कहते हैं शहर को। बर्मा के प्राचीन राजाओं ने जिस स्थान पर अपनी आपसी लड़ाई बंद करके शांति स्थापित की, उस स्थान का नाम हो गया 'यां गंऊ-म्यो'।

हम लोग इसे रंगून कहते हैं। अंगरेजों के लिए यह रंगून एक अर्थहीन स्थान-सूचक शब्द-भर है। सरकार द्वारा निश्चित और प्रचारित इस शब्द का हमें भी झख मारकर उपयोग करना पड़ता है, लेकिन एक भी बर्मी रंगून नहीं कहता। उसके लिए तो इस शहर का प्रिय नाम 'यां गंऊ' है। यह नाम उसका शांति-मंत्र है और उसके देश में शांति स्थापित होने का स्थान।

पीमना में अपनी छुट्टियां बिताकर रतुभाई ने लौटते समय यां गंऊ की जेटी पर जो अनुपम दृश्य देखा, वह उसका अहोभाग्य ही था। किसी बहुत बड़े अंग्रेज का बर्मा में पदार्पण हो रहा था। वह सरकारी प्रतिनि बर्मा-वासियों के लिए आशा और बधाई का यह संदेश लेकर आया कि बर्मा बर्मा-वासियों का ही है और सदा-सर्वदा उन्हींका रहेगा। लोग उसका जो स्वागत कर रहे थे वह सारे संसार में अनोखा, अ और अभूतपूर्व था।

बंदर की विशाल जेटी, दूर से देखने पर काले रंग के रेशम से ढंकी हुई मालूम पड़ती थी। कहीं एक इंच जगह भी खाली नहीं थी। सारी जेटी पर बर्मी सुंदरियाँ पांच या छः पंक्तियों में घुटने मोड़े बैठी हुई थीं। उनमें से प्रत्येक ने दाहिने कंधे की ओर से अपने पैरों तक लंबे काले बालों की वेणियां जेटी पर बिछा दी थीं।

जहाज आकर जेटी पर लगा। उस सामान्य अतिथि ने आकर वेणियों के उस काले मुलायम पावड़े पर पांव रखा। वह नारी-वेणी की सजीव कालीन पर होकर चला। अप्सराओं के मस्तक उनके चरणों पर लोट रहे थे। देवताओं को भी लालायित कर देनेवाला वह स्वागत था।

एक गहरी निश्वास छोड़कर रतुभाई सनान-टो की ओर चल पड़ा।

सनान-टो भी बिगड़ा हुआ शब्द है। सही शब्द तो है 'काना-टो'। 'काना' यानी नदी का किनारा और 'टो' कहते हैं जंगली गांव को।

परन्तु सनान-टो अब न तो जंगल रहा था और न गांव ही। इरावदी को पार करके सामने की ओर दो-एक मील जाने पर एक कतार में चालीस-पचास चिमनियां धरती की छाती चीरकर आसमान में बेहयाई से सिर उठाये धुआं उगलती खड़ी दिखाई देती थीं। ये चालीस-पचास चावल की मिलें थीं।

किसी जमाने में बर्मा में सर्वत्र चावल कूटने की पांव की ढेकियां थीं। अब उनका स्थान मिलों ने ले लिया था। इन मिलों के मालिक सभी तरह के लोग थे—अंग्रेज, मारवाड़ी, गुजराती, काठियावाड़ी, मोमिन, चीनी और बर्मी, सभी। ये मिलें दो तरह की थीं। एक, धान कूटकर चावल बनाने की और दूसरी उबाले हुए चावल तैयार करने की। हमारे देश के बंगाली और मदरासी यही उबालकर सुखाये हुए चावल खाते हैं।

रतुभाई एक ऐसी ही उबले हुए चावल तैयार करने की जोहरमल-दामजी राइस-मिल का मैनेजर था। यह मिल एक मारवाड़ी और एक काठियावाड़ी की सम्मिलित साझेदारी में थी। मिल के मैनेजर रतुभाई को पैंतीस रुपए मासिक वेतन मिलता था। उसके हाथ के नीचे पंद्रह से तीस रुपए मासिक वेतन के पांच-सात 'बाबू' और थे। मालिकों को

मिल से लाखों की आमदनी थी। वे बस सांझ को मोटर-बोट में बैठकर यां गंऊ से आते और घंटा-आधघंटा चक्कर लगाकर वापस चले जाते। मिलों के आसपास बर्मियों के कच्चे देहाती ढंग के लकड़ी के मकान थे। पक्के और पुख्ता मकान तो मदरासी चेट्टियारों के ही थे। उन्हें अपनी लाखों की संपत्ति और तिजोरियों के लिए पक्के मकानों की आवश्यकता थी। गुजराती भी चेट्टियारों के इन्हीं पक्के मकानों में अपनी तिजोरियां किराये पर रखते थे।

रात की पाली पूरी कर, हाथ-मुंह धोकर, वेणियां गूंथती हुई बर्मी मजूरिनें प्रसन्न मुख से रतुभाई को यह कहती हुई कि 'बाबू, अख्वीं पेवा' (—मैं जा रही हूं, बाबूजी) एक-एक कर विदा ले रही थीं।

उन्हें देखकर यह कौन कहेगा कि उन्होंने रातभर उफनती हुई भाप में मजदूरी की है। उन्होंने फिर से रंग-बिरंगी लुंगी और साफ-सफेद एंजी पहन ली थी। उनमें से प्रत्येक के शरीर पर कहीं-न-कहीं एकाध खोटा-खरा हीरा भी जगमगा रहा था। मुद्रिकाविहीन तो शायद ही किसीका हाथ होगा। खुराक उनकी सिर्फ चावल और मछली की ही थी। देह का पोषण हो या न हो, वे कौषेय, हेम और हीरक के द्वारा अपनी रसिकता का निरंतर पोषण करती रहती थीं। और पुष्प ? वे तो बर्मी स्त्री का जीवन ही हैं।

नई आई मजदूरिनों ने कपड़े बदलकर काम करने के कपड़े पहन लिये थे। सढोंऊ[1] खोल-खोलकर अपने बालों को फिर से ठीकठाक बांध लिया था। वेणी में से पुष्प निकालकर फूलों के रसिक इस मैनेजर की मेज पर ढेर लगा दिया था। फिर हाथ में खोंचे लेकर पांवों में फना[2] पहने उनका एक दल उबले हुए चावल सुखाने की प्लेटवाले विभाग की ओर चल दिया।

"अरे मा-पू", रतुभाई ने एक मजदूरिन से कहा, "तू अभी तक जिंदा है ! देग पर काम कर लेती है ?"

"कर क्यों नहीं लेती हूं, बाबूजी !" उस स्त्री ने अपने बच्चे को दूध

---

१. जूड़ा। २. लकड़ी की एक खड़ाऊं।

पिलाकर पालने में सुलाया और चलते-चलते रुककर कहा, "चीनी की मिल में भी देग पर मैं ही काम करती थी, तब यहां क्यों नहीं कर सकूंगी ?"

"पर तू रहने दे।"

"मुझे कुछ भी नहीं होने का, बाबूजी। आप नाहक डरते हैं।"

यह कहकर वह देग पर चढ़ने के लिए चल दी।

बड़ी-बड़ी ऊंची देगें थीं। उधर से एक नल पानी का और इधर से दूसरा एक नल १६७ डिग्री गरमी पहुंचानेवाली भाप का आता था और दोनों देग के सिरे पर आकर जुड़ जाते थे। उन जुड़े हुए नलों के मुंह में से देग में भरे हुए धान पर जो धारा पड़ती थी उसे पानी के बदले उबलता हुआ लावा कहना ही ज्यादा उपयुक्त होगा।

बयालीस घंटे तक धान को उस उबलते हुए पानी में पकाया जाता था, फिर उस पानी को नीचे जालियों के द्वारा बाहर की ओर निकाल देते थे।

उस पानी में से एक बड़ी ही तेज और असहनीय दुर्गंध आती थी। उस पानी के पास खड़े रहना साक्षात् रौरव नरक में वास करने के समान था।

वह बदबू बर्मी मजदूरों को नहीं, बल्कि भारतवर्ष के उड़िया मजदूरों को सहनी पड़ती थी।

१६७ डिग्री तापवाले पानी में बयालीस घंटे तक उबले हुए धान को टोकरियों में भरकर देग से बाहर निकालनेवाले मजदूर उड़ीसा के अस्थिशेष कंकाल थे।

बर्मी मजदूरों को वहां जाने की हिम्मत न थी और बर्मी स्त्रियां तो उन देगों से दूर ही भागती थीं।

बच्चे को दूध पिलाकर सिर्फ एक ही बर्मी स्त्री देग पर चढ़ने गई। उसे उधर जाते देख रतुमाई का दिल मारे डर के धड़कने लगा।

एक बार देग के कठघरे पर एक बर्मी स्त्री को झुकते हुए देखकर उसका दिल धड़क उठा था। वह कठघरा जर्जर होगया था। कई

मालिकों से उसकी मरम्मत कराने के लिए रतुभाई कह चुका था, परंतु हर बार उन्होंने टाल दिया था।

ये वर्मी मजदूर तो मुसीबत के परकाले हैं। काम की घंटी बज गई है, फिर भी शान से बैठे हैं और चिमटे लेकर दाढ़ी-मूछों के बाल उखाड़ रहे हैं!

"तो फिर दाढ़ी-मूछें मुड़ा क्यों नहीं लेते?" मैनेजर रतुभाई को अपने इस प्रश्न का माकूल जवाब मिला "अरे बाबू, खूंटियां चुभती हैं।"

"चुभती होंगी!"

"पूछ देखो हमारी स्त्रियों से। हमें, नहीं उन्हें चुभती हैं।"

"बेहया कहीं के!" और मैनेजर अंदर चला गया। वर्मी मजदूरों को ज्यादा छेड़ना निरापद नहीं था। एक खास अनुपात में उन्हें प्रत्येक कारखाने में रखना ही पड़ता था। कानून जो था। झगड़ा करने को वे हमेशा कमर बांधे तैयार रहते थे। धा तो वे पास में रखते ही थे। धा और बेतारा नामक एक वाद्य दोनों सदा उनके साथ रहते थे। कारखाने में काम करते वक्त भी बेतारा बजा-बजाकर वे अपनी बेसुरी आवाज में चीखा करते थे। उसे गीत कहना गीत का निरादर करना है। गीत तो उत्पन्न होता है नारी के किन्नर-कंठ से। उनका गाना गाना नहीं, चीखना था। किसी तरह समझा-बुझाकर उन्हें काम पर लगाना पड़ता था।

पानी निकाले हुए देगों में से उड़िया मजदूर टोकरियां भर-भरकर दौड़ते हुए आते और धान दूसरे बड़े पीपों में डाल जाते। इन पीपों के बीच में भी भाप के नल लगे हुए थे। देग में उबले हुए धान पर इन पीपों में पुनः बाष्प-क्रिया होती थी।

पीपों की प्रक्रिया पूरी हो जाने के बाद ढेर-के-ढेर चावल स्टीम प्लेट पर सूखने के लिए आ पड़ते थे। इन प्लेटों को नीचे से भाप पहुंचाई जाती थी। यहां चावल को उलट-पलट करने और हिलाकर फैलाने का 'सबसे हलका' काम हेम, हीरक, पुष्प और पफ़-पाउडर मंडित वर्मी स्त्रियां करती थीं

'सबसे हलका!' हां, यह काम इतना ज्यादा हलका था कि जब कभी रतुभाई इस विभाग में आता तो तीन मिनट से ज्यादा वहां रुक नहीं

सकता था। उतने में ही उसका सारा शरीर झुलसने लगता, आंखों में अंधेरा छा जाता और वह भागकर बाहर निकल आता था !

इस 'सबसे हलके' काम को करनेवाली बर्मी मजदूरिनों की एक-एक टुकड़ी इस प्लेट पर पंद्रह मिनट से ज्यादा देर तक ठहर नहीं सकती थी। वहां एक बार में लगातार सिर्फ पंद्रह मिनट तक काम करने का नियम था। पंद्रह मिनट तक चावल हिलाकर एक टुकड़ी बाहर निकल आती थी और उसका स्थान दूसरी टुकड़ी ले लेती थी।

रतुभाई बाहर आया ही था कि शोरगुल मचाता हुआ उड़िया मिस्त्री देग पर से दौड़ा आया और खबर दी, "बाबूजी, बाबूजी ! मा-पू देग के अंदर गिर पड़ी।"

"एंऽऽ।" रतुभाई का स्वर विकृत होगया।"

"जीहां। कठघरा टूट गया और मा-पू अंदर जा गिरी।"

रतुभाई दौड़ा गया। मा-पू का शरीर देग में से निकाला जा चुका था। धान के साथ मानव-शरीर भी उबल चुका था। धान में और मनुष्य के शरीर में फर्क ही क्या है ! फर्क तो हम किये हुए हैं।

लेकिन नहीं, बहुत बड़ा फर्क है दोनों में। धान का छिलका पूरे बयालीस घंटे उबलने के बाद भी फटता नहीं है। पीपे की भाप में उबलने के बाद तब कहीं जाकर वह जरा-सा फटता है।

और इसके सिवा धान के तो बच्चा नहीं होता।

एक ओर मा-पू का झुलसा हुआ शरीर पड़ा था और दूसरी ओर पालने में उसका बालक रो रहा था।

मिल में डॉक्टर नहीं था, क्योंकि डॉक्टर रखने की कोई कानूनी बाध्यता नहीं थी। थे सिर्फ प्राथमिक उपचारों के साधन, क्योंकि कानून की दृष्टि से उनका वहां होना अनिवार्य था। लेकिन मा-पू का शरीर प्राथमिक उपचारों की सीमा पार कर चुका था।

मा-पू की एड़ी तक लंबी वेणी एक ओर को अस्त-व्यस्त पड़ी थी। अभी सवेरे ही यांगंऊ-म्यो की जेटी पर रतुभाई ऐसी शतसहस्र वेणियां बिछी हुई देख चुका था।

उस वेणी के फूल अभी भी रतुभाई की मेज़ पर बिना कुम्हलाये पड़े थे।

यांगंऊ टेलीफोन किया गया और सेठ लोग मोटर-बोट से आगये। फैक्टरी इंस्पेटर को भी सूचना दी गई, लेकिन शामजी सेठ ने उसके आने से पहले ही रवाना हो जाना उचित समझा।

"लेकिन वह भी आता ही होगा।" रतुभाई ने कहा।

"तुम्हीं निपटा लेना, मिस्टर।" सेठ ने रतुभाई को समझाया, "जैसा उचित समझो, करना।"

"लेकिन इस कठघरे का क्या होगा! वह मेरी गर्दन दबोचेगा।"

"जैसा तुम ठीक समझो, निपटा लेना, कह तो रहा हूँ।" शामजी सेठ ने आंख से इशारा करते हुए कहा।

"लेकिन कहीं मुझे अदालत में घसीटा तब?"

"जो दंड पड़ेगा, कंपनी उसे तुरंत भर देगी। उसमें ऐसी घबरा की क्या बात है!" शामजी सेठ ने फिर आंख से इशारा किया।

आंख के एक ही इशारे से दुनिया को समझा देने की करामात जग-जाहिर है ही।

और दूसरे ही क्षण सेठ को यांगंऊ ले जानेवाली मोटर-बोट नदी के पानी पर घड़घड़ाती चली जा रही थी।

: ५ :

कभी-कदास हो जाने-वाली ऐसी दुर्घटनाओं के सिवा जोहरमल धामजी राइस मिल का काम एक निश्चित क्रम के अनुसार हमेशा, बिना किसी व्यवधान के, शांतिपूर्वक चलता रहता था। इरावदी के रास्ते विशालकाय नौकाओं मे, जिन्हें बर्मी भाषा में 'गौंग' कहते हैं, धान आता था। प्रत्येक गौंग मे तीन से चार हजार मन तक और संपानों[1] मे आठ सौ-नौ सौ मन तक धान रहता था। इस धान को खरीदने-तौलने के लिए नदी के किनारे झोपड़िया बनी हुई थीं, जिनमे सेठ लोगों के गुजराती मुनीम बैठते थे। यहां तौल-मोल को लेकर काले रेशम के झब्बे पहननेवाले चीनियों और लंबी चोटीवाले मध्य बर्मा के निवासियों के साथ उन लोगों की खासी धमा-चौकड़ी मची रहती थी। उधर सधे हुए चार मजदूर तौल मे कसर निकालते थे तो इधर बेचनेवाले धान में भूसा मिलाकर मिलवालों की आंखो मे धूल झोंकने का प्रयत्न करते थे। अपने मालिकों का फायदा कराने के लिए उन लोगों के साथ जान जोखम में डालनेवाले काठियावाड़ी युवक सस्ते मे मिल जाते थे। दिन भर तो वे ढाई[2] में बैठे तौल करते थे और फिर रात को दो बजे तक बैठकर वही-खाता लिखते थे। इन नमक-हलाल नौकरों की सहूलियत के लिए ताकि चौबीसो घटे इनसे काम लिया जा सके, सेठ लोगों ने मिलों में ही अपनी ओर से ढाबे चला रखे थे।

जोहरमल धामजी राइस मिल काठियावाड़ी युवकों के लिए मुंह

---

[1] छोटी नौका। [2] नदी किनारे की मंडी, जहां धान बिकने आता था

मांगी मुराद थी। पिछली नौकरी में से निकला हुआ या निकाला हुआ शिवशंकर काफी भटक चुकने के बाद अब तीन महीने से यहां उम्मीदवारी में था। उसके खाने का प्रबंध सेठ ने अपनी ओर से मिल के ढाबे में कर दिया था। वहां कोई पांचेक वेतन-भोगी बाबू भी थे। उनका मासिक वेतन पंद्रह से लगाकर तीस रुपये तक था। उनकी हजामत, कपड़ों की धुलाई और खाना-खुराक सेठ के ही मत्थे थी। वे चौबीस घंटे के नौकर थे, इसलिए रहते भी मिल में ही थे।

तीन महीने की उम्मीदवारी के बाद शिवशंकर की वेतन के निर्णय के लिए सेठ के सामने पेशी हुई।

"वैसे तुम हिसाब-किताब में तो काफी कमजोर हो।" अंत में शामजी सेठ ने फैसला करते हुए कहा, "लेकिन अब चूंकि दूसरी जगह कहीं तुम्हारी पटरी नहीं बैठती तो हमीं बारह रुपये दे देंगे।"

"अरे सेठसाहब," बारह रुपये का नाम सुनकर तो शिवशंकर पर पाला ही पड़ गया, "तीन महीने से तो मैं मां को घर पर एक कानी कौड़ी भी नहीं भेज सका हूं। जरा मेहरबानी करके इसका भी तो खयाल कीजिये। दो साल का तो मैं भी यहां का अनुभवी हूं।"

"अच्छा जाओ, पंद्रह दे देंगे। इससे ज्यादा देने का तो रिवाज ही नहीं है।"

और रिवाज की बात पक्की थी।

बीस बरस पहले जब यही शामजी सेठ मैट्रिक तक पढ़कर यहां आये थे तो इनके सेठ बंदर से इन्हें लाने के लिए खुद गाड़ी लेकर गये थे। परंतु अब वह जमाना नहीं रहा। विद्या के साथ-ही-साथ देश में बेकारी भी बढ़ती जा रही थी। विधवा माताओं द्वारा पाल-पोसकर बड़े किये और जाति के पंचायती छात्रालयों में रहकर किसी तरह पढ़े हुए लड़के मैट्रिक तक पहुंचते-न-पहुंचते बूढ़ी मां को दलने-पीसने की मजूरी से मुक्त करने और ज्यादा-से-ज्यादा किसी लड़की के पति बन जाने की महती अभिलाषा से प्रेरित होकर झुंड-के-झुंड अफ्रीका या बर्मा का रास्ता पकड़ते थे। इसलिए बर्मा में बाबुओं का भाव टके सेर था। दस बरस पहले अंग्रेजी जाननेवाले बाबुओं को चिराग लेकर

ढूंढ़ना पड़ता था, अब वे गली-गली मारे-मारे फिरते थे।

दो बरस पहले जब शिवशंकर यहां आया तो उसकी उम्र मुश्किल से बीस बरस की होगी। जूनागढ़ के एक ब्राह्मण बोर्डिंग को छोड़कर जब वह प्रथम बार अपने जन्म-गांव माणावदर के रेलवे स्टेशन से रेलगाड़ी में सवार हुआ तो उसकी दशा उस दूध-पीते बच्चे की-सी थी, जिससे मां का दूध छुड़ाया जा रहा हो। विदा देने के लिए स्टेशन तक आई हुई मां ने ठीक उसी तरह सीख के कड़ुए वचन कहे जिस तरह बचपन में दूध छुड़ाने के लिए स्तन पर नीम का कड़ुआ लेप लगा दिया था।

मां अंतिम सीख दे रही थी, "अब तू कोई बच्चा नहीं रहा। परदेश कमाने जा रहा है। काम-धंधे में मन लगाना। यह नहीं कि सैर-सपाटे कर रहे हैं और महीने की पूरी तनख्वाह ही फूंक-फांक दी। मुझे भी जाते ही रुपये भेजना। तेरे यार-दोस्तों का भी तो कोई पार नहीं है। चिट्ठी-पत्री लिखने में ही पूरी तनख्वाह उड़ जायगी। इस बात का भी खयाल रखना। सरकार मुई को जाने क्या सूझा कि छः महीने बाद एक आने का लिफाफा डेढ़ आने का कर देगी। यह भी नहीं सोचा कि गरीब बेचारी विधवा चिट्ठी भेजने को पैसे कहां से पायगी? तू खयाल रखना, मेरे भैया। यहां था तभी दोस्तों को इतनी चिट्ठियां लिखता था, वहां तो कोई पूछने-ताछनेवाला है नहीं। फिर तू ठहरा शाहजादा! कारट काहे को लिखने लगा। दो टूक बात के लिए भी लिफाफा होगा। भैया को भी आठवें दिन चिट्ठी लिखने के फेर में मत पड़ जाना। अच्छी तरह कान खोलकर सुन ले, मुझे तीसरे महीने चिट्ठी लिखता रहियो। यह नहीं कि तू वहां से कागजों के घोड़े दौड़ा दे और हर आठवें दिन ढाई आने पैसे पानी में फेंकने लगे।"

गाड़ी रवाना होने तक अपने आंसुओं को रोक रखने के लिए मां ने जान-बूझकर सीख के कड़वे बैन बेटे को सुनाये थे। उधर गाड़ी ने सीटी दी और इधर मां की आंखों से आंसू झर-झरकर बह निकले। स्टेशन से घर तक का सारा लंबा रास्ता उसने अकेले चुपचाप रोते हुए काटा और घर पहुंचकर भी रोती रही। दो दिन तक उसे खाना-पीना कुछ

नहीं सूझा । पड़ोसियों की आंख बचाकर वह घुएं के बहाने जी भर-
र रो लिया करती थी ।

शिवशंकर ने मां की नेक सलाहों को तो तीसरे स्टेशन के बाद पड़ने-
वाली नदी के हवाले किया और उसी गाड़ी से अफ्रीका जानेवाले अपने
सहपाठी से पत्र-व्यवहार में नियमित रहने का जिक्र छेड़ दिया । आठवें
दिन बिला नागा चिट्ठियां लिखने के वादे हुए और दोनों ने एक-दूसरे को
अच्छी तरह ठोक-बजाकर पत्र-व्यवहार में प्रमाद न करने की सूचनाएं
दीं । पंद्रह वर्ष की उम्र से लेकर विवाह होने तक का समय प्रत्येक
किशोर और युवक के लिए मित्र के साथ 'प्रणय' का, 'प्यार' का, विरह
की यातनाएं सहने, तड़पने और आहें भरने का होता है । विवाहोपरांत
यदि पत्रों की वह फाइल पत्नी के हाथ लग जाय तो वह उन्हें पढ़कर
निश्चय ही ईर्ष्याग्नि में जल उठेगी । हां, यह बात दूसरी है कि विवाह
के बाद वे दोनों 'प्रिय सुहृद' और 'अभिन्नतम' मिटकर केवल 'भाई' या
'मित्र' रह जाते हैं ।

बर्मा पहुंचकर शिवशंकर ने जो पहला पत्र लिखा वह मां के नाम
नहीं, जंक्शन स्टेशन पर जुदा होकर अफ्रीका गये हुए एक ऐसे ही मित्र
के नाम था ।

"प्रिय सुहृदवर,

पत्र मिला । पढ़कर जिस आनंद और संतोष का अनुभव हुआ व
वर्णनातीत है । फिर इसी आशा में यह पत्र भेज रहा हूं और विश्व
करता हूं कि निराश नहीं होना पड़ेगा । आशा तो अंत तक बनी र
क्योंकि आशा अमर है और वह जीवन का कटु मधुर अंश है ।
उसे पूरा करना तुम्हारे ही हाथ की बात है ।

—तुम्हारा ही शि

मां को जो पत्र लिखा गया, उसमें न तो आशा की कड़व
और न उसका माधुर्य ही । उसमें थी कठोर वास्तविकता—

"...भाई ने पैसे दे दिये होंगे । न दिये हों तो मंगवा लेना
तो मैं भेज नहीं सकूंगा । तनख्वाह कुल बीस तै हुई है...किसी
चिंता मत करना । भाई के यहां भाभी को प्रणाम तथा

प्यार। नीमु भाभी के घर सबको यथायोग्य। छोटी-बड़ी भाभी और चाची को वंदे। और सब जान-पहचानवालों को और खासतौर पर *शारदु बहन को स्नेह-स्मरण।"*

हास्य-व्यंग्य की छटा भी मित्रों को लिखे जानेवाले पत्रों में ही प्रकट होती थी :

"प्रिय धीरेंद्र,

पत्र मिला। पढ़ा। एक बार नहीं, एकाधिक बार पढ़ा। विविधता और वैचित्र्य न होते हुए भी मेरे लिए तो आकर्षक था ही।

वह रामदूत पवनसुत देवेंद्र जटाशंकर यहीं है। खाने के समय अचानक मुलाकात हो गई थी। क-क-क-क्या हाल हैं? पूछ लिया था। व-व-व-विराणी का कोई पत्र है?"

इसके बाद मां को लिखा हुआ एक पत्र—

"परम पूजनीया तीर्थ-स्वरूप अम्मां,

अफ्रीका से विनु का पत्र आया है। तुम्हें बहुत-बहुत याद किया है और लिखा है कि वे दिन कब आयेंगे जब हम दोनों एक थाली में साथ बैठकर खाते होंगे और अम्मां प्रेम से परोसती होंगी।"

पहलेवाले सेठ की नौकरी छोड़ने के बाद दो महीने तक तो पत्र-व्यवहार करने की सामर्थ्य ही नहीं रही थी। जौहरमल दामजी राइस मिल में लगने के बाद फिर से यह अवसर मिला—

"मेरे परम प्रिय मित्र विनय,

सात तारीख का पत्र आज मिला, पूरे एक महीने बाद। मैं तो प्रतीक्षा करते-करते थक गया था। पत्र मिला उस समय ऑफिस का काम कर रहा था, लेकिन काम को एक ओर पटककर पहले पत्र पढ़ा।

पत्र पढ़कर कई बातें दिमाग में घूमने लगीं। रोकड़-बही में दो-एक गलतियां भी कर गया। मन में जाने कितने विचार उठते हैं और फिर शांत हो जाते हैं। मैं, तू, बावला—बचपन, जवानी—बर्मा, अफ्रीका, काठियावाड़, रंगून की दुम, और माणावदर में हम सब इष्ट-मित्र, सगे-संबंधी, भाई-भाभी आदि कई बातें एक साथ दिमाग में उठती हैं और खिचड़ी-सी पकाकर फिर शांत हो जाती हैं।

इधर कुछ दिनों से मेरा मन अशांत रहने लगा है। अनेक विचा में घुमड़ते रहते हैं। तबीयत भी कुछ योंही-सी है। उसका क्या दोष ? किसी बात की नियमितता नहीं। कभी सारा दिन कुर्सी र बिताना पड़ता है, तो कभी रात-रातभर जागकर काम करना पड़ता है। ऊपर से ऑफिस का काम सिर पर रहता ही है। न कहीं आने के, न कहीं जाने के। यों कहने को हम सात गुजराती बाबू लोग हैं, पर ड्यूटी मजदूरों से भी कड़ी। पूरे चौबीस घंटे की गुलामी है। मिल क्या हुई, जेल होगई। बाहर जाने का मौक़ा ही नहीं मिलता। सबकुछ मिल का मिल में और नियमितता किसी बात की नहीं।

आज भी मुझे रात को दो बजे के बाद कहीं सोना नसीब होगा। रात की ड्यूटी लगी है। यह मिल उबाले हुए चावल तैयार करती है। चावल को उबालकर सुखाया जाता है। वे ठीक तरह से सुखाये गये हैं कि नहीं, यह देखने के लिए मुझे हर घड़ी जाना पड़ता है। आज रात जो चावल सुखाये जा रहे हैं उन्हें पास करने की मेरी बारी है। यह पत्र मैं तुझे थोड़ा-थोड़ा कर लिख रहा हूं। एक बैठक में लिखना संभव नहीं। जरा-जरा-सी देर में चावल देखने के लिए जाना पड़ता है। दूसरे एक साथी अमर ज्योति, धूप-छांह, आदि चित्रपटों के गानों का रिकार्ड लाये हैं और वे बजाये जा रहे हैं। उनमें 'जीवन का सुख आज प्रभु' वाला रिकार्ड भी है कुछ गुजराती और हंस पिक्चर्स के भी हैं। इस तरह हम अपने शु जीवन को थोड़ा रसमय बना लेते हैं। अभी तो सिर्फ ग्यारह ही बजे लेकिन पत्र पूरा होने की कोई उम्मीद नहीं (काम की वजह से)।

प्रिय विनय, तू तो वहां जाकर मैनेजर होगया है और मैं सिर्फ एक क्लर्क ही हूं; परंतु फिक्र नहीं, क्लर्क हुआ तो क्या, मैं भी करके दिखलाऊंगा !

हमारे यहां बंबई की तरह आटोमेटिक टेलीफोन न होने के 'कनेक्ट' करने के लिए आपरेटिंग-हाउस को नंबर देना पड़ता है के एक ऑपरेटर के साथ मेरी दोस्ती होगई है। जिस रात क ड्यूटी रहती है और हम खाली हुए तो टेलीफोन पर घड़ी- लिए गप्पें लड़ाकर जी बहला लेते हैं और दूसरी मिलों की,

आफिसों की बातें चोरी-चुपके सुनते हैं। मनोरंजन के साथ कुछ जानने को भी मिल जाता है, हालांकि वे सब हैं गप्पे ही। हां, मनोरंजन खूब हो जाता है

—शेष दूसरे दिन।

सुख-दुख दोनों एक समान,
दो दिन के मेहमान।
यह भी देखा, यह भी देख ले,
दोनों को पहचान।
मूरख मन होता क्यों हैरान!

विनु भैया, कल पत्र पूरा कर लेने का इरादा तो बहुत था, लेकिन पूरा कर नहीं पाया। कल के लिखने में काफी असम्बद्धता है, क्योंकि यह कुलियों, बर्मी मजूरों आदि के साथ बातें करते, उन्हें समझाते और आदेश देते हुए विचलित अवस्था में लिखा गया था।

तू कहता है कि श्रम और बुद्धि का बैर है। लेकिन क्या यह सच है? इधर मुझे काफी मेहनत करनी पड़ती है और मेरा दिमाग ठिकाने नहीं रहता है। लेकिन यह तो शारीरिक श्रम के कारण से ऐसा होता होगा। जो हो, मेरा तो शरीर और मस्तिष्क दोनों ही खराब हो रहे हैं। रतजगा और अनियमितता ही इसका कारण है। चिंता नहीं; शीघ्र ही मैं इसका आदी हो जाऊंगा।

यहां के निवासियों का जीवन बड़ा ही अद्भुत और जंगलियों जैसा है। चावल सुखाने के लिए आनेवाली बर्मी स्त्रियों को पौने ■ आने रोज मिलते हैं। कभी एक दिन गैरहाजिर रहीं तो दूसरे दिन फाके की नौबत आजाती है। फिर भी जो मिलता है, उसे तुरत खर्च कर डालती हैं और बनी-ठनी रहती हैं। माथे पर पचास पौण्ड वजन उठाने को तो मजूरी करेंगी और पहनेंगी वायल का कढ़ा हुआ फ्रॉक! बर्मी लोगों का रंग तो वैसे गोरा है, लेकिन जिसे हम 'लुभावना-लावण्य' कहते हैं, वह बात नहीं। हमलोग लंबी नाक को सुंदर कहते हैं और ये लोग चपटी नाक को। नाक जितनी ही चपटी होगी, चेहरा उतना ही सुंदर समझा जायगा। मैंने तो यहां तक सुना है कि ये लोग बचपन से ही

बच्चों की नाक दबा-दबाकर चपटी बना दिया करते हैं। पातिव्रत्य का काफी अभाव है। होना ही चाहिए। ग़रीबी में उसका निभाना है भी मुश्किल।

आज भी लगभग ग्यारह बज रहे हैं। सुबह पौने तीन बजे उठना है, इसलिए अब पत्र पूरा करूंगा।

मेरे सेठ की तरह तेरा सेठ तुझे उपनगर से शहर में नहीं बुला भेजता होगा। यहां तो एकाएक मैनेजर के नाम टेलीफोन आता है कि शिवशंकर को तुरंत भेजो, जल्दी काम है। जरा-सी देर हो जाती है तो जवाब-तलब किया जाता है कि 'देर क्यों हुई? तुम्हें क्या कहा जाय? मुझे तुमपर बेहद गुस्सा आ रहा है।' फिर जब मैं पूछता हूं कि काम क्या था तो जवाब मिलता है कि 'पास आओ, दूर से कैसे बताया जा सकता है।' मुझे मन-ही-मन उसकी मूर्खता पर हँसी आती है, फिर भी प्रकट में अपनी गलती मंजूर कर लेनी पड़ती है। वह समझता है, मानों उसने कोई बड़ी मुहीम फतह करली है।

हमारे मैनेजर भी युवक और अविवाहित हैं। आदमी बड़े फक्कड़ हैं। बर्मी लोगों के दोष और कुरूपता उन्हें दिखलाई नहीं पड़ते। इसलिए हम उनकी उपस्थिति में या उनकी जानकारी में कभी बर्मी लोगों की निंदा नहीं करते।

उन्हें वेतन कितना मिलता होगा यह जानता है? सुनकर तुझे आश्चर्य होगा। पैंतीस रुपये नक़द और हमारी ही तरह सेठ के बासे में खाना-पीना। धोबी-नाई मुफ्त।

—तेरा शिव"

: ६ :

अपने मित्रों के पत्रों में व्यक्त किये गये बर्मी नारियों के प्रति शिव-शंकर के विचारों में धीरे-धीरे परिवर्तन हो रहा था। यह बात रतुभाई मैनेजर की तीक्ष्ण दृष्टि से छिप न सकी। चावल सुखाने की प्लेट पर जहां पहले पांच मिनट में शिवशंकर की आंखों तले अंधेरा छा जाता था, वहां अब वह अकसर खड़ा बर्मी मजदूरिनों से उनकी भाषा सीखता हुआ पाया जाता था। उस भट्टी की तरह गरम कमरे में जलते तवे पर बर्मी मजदूरिनें रात-दिन खोंचे हिलाया करती थीं। हर पंद्रह मिनट बाद काम करनेवाली उनकी टुकड़ी की बदली हो जाती थी। पंद्रह मिनट में तो उन्हें बाहर निकलना ही पड़ता था, लेकिन कोई-कोई मजदूरिन तो उतने में भी बेहोश हो जाती थी। मुंह पर पानी के छींटे मारकर उसकी साथिनें उसे होश में लाती थीं। होश में आते ही वह औरत सिर की पी (कघी) निकालकर अपने बाल ओछने लग जाती। न तो किसीसे शिकायत करती और न काम बदलने के लिए किसीके आगे हाथ-पांव ही जोड़ती थी। वेतन-वृद्धि के लिए भी वह प्रार्थना नहीं करती थी। दिन की पाली पूरी होने पर सांझ को और रात की पाली पूरी होने पर सवेरे के समय ये मजदूरिनें हाथ-मुंह धोकर कपड़े बदलतीं और हँसती-हँसाती अपने घरों को चली जाती थीं। घंटों आग में तपने के बाद अच्छे कपड़े पहनना और वेणी में सुगंधित फूल गूंथना ही इन स्त्रियों का सहारा था। कई बार तो इन्हें सिर्फ तीन-साढ़े तीन आने ही मिलते थे, लेकिन इनके पुष्प-शृंगार में किसी तरह की बाधा नहीं आने पाती थी। इधर शिव-

शंकर को इन वर्मी स्त्रियों में जो मोहिनी दिखलाई पड़ने लगी थी, उसका एक कारण माता का हाल में आया हुआ पत्र था। पहलेवाले पत्रों में मां अकसर लिखवाया करती थी कि जल्दी से हजारेक रुपये बचाकर खबर दे, ताकि मैं कहीं तेरी शादी का डौल कर सकूं। वह विस्तार से कन्याओं का हवाला देती और बतलाती थी कि किसके लिए कितना खर्च करना पड़ेगा। उत्तर में शिवशंकर लिखता कि यहां तो सात जनम में भी हजार रुपये जमा होने की आशा नहीं है।

इस बार मां ने लिखा था, "बेटा, मैंने कुल की ऊंचाई का सारा अभिमान छोड़ दिया है और अब अपने से नीचे कुल की कन्या ढूंढ़ रही हूं। जानती हूं कि स्वर्ग में तेरे पुरखों के नाम पर बट्टा लगेगा, परंतु उनके नाम पर बट्टा लगने से ज्यादा चिंता मुझे तेरे बिन-ब्याहे रह जाने की है। अगर हममें श्रेष्ठता होगी तो निम्न कुल की पराई लड़की भी हमारे घर आकर श्रेष्ठ हो जायगी। इसलिए जो तुझे स्वीकार हो तो मैं कहीं बातचीत करूं। फिर भी कम-से-कम पांच-सौ रुपये का डौल तो करना ही होगा।"

शिवशंकर ने उत्तर दिया, "मां, कुल मर्यादा छोड़ने और पुरखों के नाम पर बट्टा लगाने की जरूरत ही नहीं पड़ेगी। मेरे पास पांच सौ रुपये जमा होने की भी कोई उम्मीद नहीं है। तुम नाहक लड़कियों के घरवालों को उलझाये मत रखना।"

बस, इसके बाद शिवशंकर की आंखों को यह स्वीकार कर लेना पड़ा कि वर्मी औरतें सुंदर होती हैं। दूसरी बात उसे यह मान लेनी पड़ी कि काठियावाड़ी लड़कियां शादी करने के योग्य नहीं हैं, और तीसरी बात उसने यह गांठ बांध ली कि अब काठियावाड़ से उसका कोई संबंध नहीं रह गया। वर्मा ही उसका सच्चा वतन है। मां मर जायगी और विवाहित बहन तो अभी से मरी के समान है।

इसके बाद से रात की पाली में सूखते चावल का निरीक्षण उसे अच्छा लगने लगा। रात में जब वह दिनभर की चावल खरीदने की रिपोर्ट तैयार करने बैठता तो मजदूरिनों के फूलों की महक उसके हृदय में एक मधुर वेदना उत्पन्न कर देती थी। वेणियां खोलकर उन्हें फिर से

संवारती हुई वर्मी मजदूरिनें आतीं और उसकी मेज पर फूलों का ढेर लगा जाती थीं। परदेश में जाभी और बहन से दूर, मा और सगे-संबंधियों के स्नेहांचल की छाया से दूर, नॉन-मैट्रिक पर साहित्य-रस में आकंठ निमग्न, और वनवासी होते हुए भी ग्रामोफोन के सिनेमा-गीतों की मधुर-विह्वल स्वर-लहरी से आंदोलित यह युवक धीरे-धीरे ब्रह्मदेश के मदिर वातावरण से प्रभावित होने लगा।

मिल के वासे का खाना तो शुरू से ही खराब था, परंतु एक दिन हठात् शिवशंकर के लिए उसे खाना असह्य हो उठा। शीघ्र ही उसने बासा छोड़ दिया और उपनगर में मिल से दूर एक कमरा किराये पर लेकर वहां रहने लगा। उसकी वेश-भूषा में भी सुधार हुआ। चेहरे पर की दीनता मिट गई और उसका स्थान आत्म-विश्वास की दृढ़ता ने ले लिया। एक नई बाइसिकल भी खरीद ली गई। रोज वह बाइसिकल पर चढ़कर मिल में आने-जाने लगा। इन बातों को लेकर साथियों में काना-फूंसी होने लगी। एक दिन बात रतुभाई के कान में भी पड़ी। उसने शिव को एकांत में ले जाकर पूछ-ताछ की। शिवशंकर ने शर्माते हुए कहा, "मैं आपसे सबकुछ कहने का अवसर देख ही रहा था। आज यदि अवकाश हो तो साझ को मेरे साथ घर चलिये।"

रास्ते में शिवशंकर ने एक वर्मी स्त्री के साथ शादी करने की बात कही, "देश में तो मुझे कोई सजातीय कन्या देनेवाला था नहीं और अविवाहित मैं रह नहीं सकता था।"

"बहुत अच्छा किया।" रतुभाई ने पीठ ठोंकते हुए कहा और दोनों घर आये।

शिवशंकर ने एक बड़े मकान में दो कमरे किराये पर ले रखे थे। यही उसकी गृहस्थी थी। पति के साथ अतिथि को देखकर गुजराती पोशाक-वाली एक स्त्री पिछले कमरे में जा छिपी और वहां से उसने अतिथि के लिए शिव के हाथ तश्तरी में कुछ मेवा और पानदान बाहर भेज दिया।

हृदय पर बोझ-सा महसूस करते हुए रतुभाई ने शिष्टाचार का पालन किया और बाहर आकर शिवशंकर से पूछा, "इसके माता-पिता हैं?"

"जीहां, यहीं रहते हैं।"

"विवाह में उनकी सम्मति थी ?"

"जी हां, पूरी-पूरी।"

"अब भी संबंध है ?"

"खाने-पीने को छोड़कर और सब तरह का संबंध है।"

"ऐसा क्यों ?"

"वे लोग अपनी लड़की को मछली आदि खिलाने का आग्रह रखते थे और यह मुझे पसंद नहीं था।"

"लेकिन उस लड़की को पसंद है या नहीं ?"

"नहीं, अब तो उसे भी मछली से नफरत होगई है।"

"धर्म के मामले में ?"

"उस बारे में मैंने उसे स्वतंत्रता दे रखी है। वह फया में जाना चाहे तो जा सकती है।"

"तुम साथ जाते हो या नहीं ?"

"जी, नहीं।"

"जो मेरी सलाह मानो तो तुम्हें भी साथ जाना चाहिए। बुद्धदेव के मंदिर में तो हम भी जा ही सकते हैं। वहां जाने में हमें भला आपत्ति ही क्या हो सकती है ?"

"आगे से जाता रहूंगा।"

"अच्छा, अब मैं तुमसे एक नाजुक प्रश्न पूछता हूं। क्या तुम उसे पर्दे में रखते हो ?"

"नहीं तो।"

"घूंघट निकलवाते हो ?"

"नहीं।"

"तो फिर वह मुझे देखकर पिछले कमरे में क्यों भाग गई ?"

"अपनी मर्जी से। उसे बहुत ही कड़वा अनुभव हुआ है।"

"कड़वा अनुभव !" सुनकर रतुभाई चौंक उठा। "किसी मित्र बेजा हरकत तो नहीं की !"

"विवाह की बात सुनकर मेरे कुछ सजातीय यहां आ धमके। उन्होंने पत्नी की उपस्थिति में ही मुझे कोसना और गालियां देना शुरू कर दिया—मैं भ्रष्ट होगया हूं। मैंने ब्राह्मण देह को भ्रष्ट किया है, वे अपने ऊपर मेरी छांह भी नहीं पड़ने देंगे, मर जाने पर मेरे शव का अग्नि-संस्कार तक नहीं करेंगे, फिर भले ही मेरी यह [illegible] मेरे शव पर महफिलें सजाये, आदि-आदि जो कुछ उनके मन में आया, बकते रहे।"

"उसकी उपस्थिति में ही?"

"जी हां!"

"यह भला क्या समझी होगी?"

"उसने हिंदी सीखली है।"

"क्या कहते हो?"

"जी, सच ही कह रहा हूं। मुझे पेटभर कर गालियां सुना चुकने के बाद वे सब इस तरह उठकर चले गये, मानों मेरी [illegible] कर गये थे। तबसे पत्नी गुजरातियों से डरती है और उन्हें देखकर छिप जाती है।"

"मैं तो तुम्हारी पत्नी को बधाई देने आया था।"

"दुबारा आप फिर कभी आयेंगे तो वह छिपेगी नहीं। मैं उसे समझा दूंगा।"

"डर तो कुछ नहीं, परंतु उसके मन में यह [illegible] नहीं आना चाहिए कि उसने एक गुजराती के साथ शादी करके कोई भारी भूल की है। शायद वह गुजराती पोशाक पहनने लगी है?"

"जी हां।"

"स्वेच्छा से?"

"जी हां, उसे पसंद है।"

"लेकिन एक बात की हमें सावधानी रखनी चाहिए कि [illegible] में नारी को पुरुष के बराबर समझने की जो उच्च भावना है, [illegible] न होने देना। हमारा व्यवहार ऐसा होना चाहिए कि पुरुषों से [illegible] वाली, उनसे बराबरी का दावा रखनेवाली और गुलामी से [illegible] से पुरुषों की सेवा करनेवाली बर्मी नारी गुजराती बनती है [illegible]—

अनुभव करे। उसे स्वप्न में भी इस बात का खयाल नहीं होने देना चाहिए कि हमारे घर में आकर उसे अपनी स्वतंत्रता खोनी या कुछ हद तक छोड़ देनी पड़ी है।"

"यहां पास-पड़ोस में तो कोई गुजराती रहता नहीं। सब वर्मी ही हैं और वह उनके घरों में स्वतंत्रता से आती-जाती है।"

"लेकिन तुम्हें उसके साथ फया में जरूर जाना चाहिए। मैं फिर कभी आऊंगा।"

"जरूर। मैं शीघ्र ही आपको बुलाने आऊंगा।"

"तुम्हें किसी से शर्माने की जरूरत नहीं। तुमने कोई बुरा काम नहीं किया। गालियां बकनेवाले मूर्ख हैं, हालांकि दोष उनका भी नहीं।"

: ७ :

यहां से आकर रतुभाई खाना खाने बैठा तो बासे का सड़ा-गला भोजन देखकर उसे घृणा-मिश्रित क्रोध आगया। आज तो खाद्य पदार्थों की दुर्गंध और उनकी स्वादहीनता सीमा ही पार कर गई थी। वेजीटेबल घी, सस्ती और रद्दी-से-रद्दी लौकी की तरकारी और कड़वे तेल में सिकी हुई पूरियां, जिनके बारे में वैज्ञानिक की प्रयोगशाला ही बतला सकती है कि वे आटे की हैं या रबर की! रतुभाई बिना खाये ही थाली पर से उठ गया और उसने प्रथम बार अपने गुजराती साथियों से कहा, "तुम सब तो हद ही करते हो! यह खाना तो जानवर के पेट में भी बीमारी पैदा कर देगा। पता नहीं, तुम लोग कैसे इसे खा लेते हो?"

"क्या करें?" रक्तहीन पीले चेहरों से किसी तरह आवाज निकली। "हमें तो रोज दोपहर को 'टाई' पर चाय के साथ ऐसी ही पूरियां खाने को मिलती हैं। किसी तरह निगलकर उस गर्मी में खरीदने-बेचने के काम में जुट जाना होता है। आखिर कहें तो किससे?"

"सेठ लोगों से!"

"वहां हमारी पहुंच कहां! हैसियत भी नहीं। शिकायत करने पर तुरंत निकाल बाहर किये जाय।"

"यदि मैं कहूं?"

"नेकी और पूछ-पूछ। बड़ी मेहरबानी होगी।"

"लेकिन कहीं तुम लोगों ने दगा दिया तो ? मुझे आगे करके खिसक ही जाओ !"

"हर्गिज़ नहीं।" और छहों आदमियों ने एक दूसरे के सामने देखा।

"देखना, मैं तो सीधी सचोट बात करना पसंद करता हूं। इस पार या उस पार।"

"मंजूर है।"

दूसरे दिन धड़धड़ाती हुई सेठ की मोटरबोट आई। यहां-वहां से मयूर पक्षियों के उड़ने की आवाज़ सुनाई दी और रतुभाई ने सब बाबुओं के सामने दफ्तर में ही सेठ से भिड़ंत शुरू कर दी, "आप क्या हमें जानवर समझते हैं ? यह हमें जो खाना दिया जाता है, वह खाना है या कूड़ा ? देश छोड़कर यहां दो हजार मील दूर परदेस में हम सिर्फ पेट की खातिर आये हैं और आप लोग हमें ज़हर खिलाकर मारे डालते हैं। कम-से-कम तनख्वाह दी जाती है और ऊपर से तुर्रा यह कि खाना देते हैं। ज़हर खिलाकर और काम करवाकर क्या हमारी जान ही लेने के इरादे हैं ?"

"तुम्हें तो मिस्टर", मिल के काठियावाड़ी हिस्सेदार शामजीभाई ने शांतिपूर्वक कहा, "बात करने की भी तमीज नहीं। सगे-संबंधियों की सिफ़ारिश पर तुम्हें रख लेने में ग़लती ही हुई।"

"ग़लती हुई हो तो उसे सुधार लीजिये सेठसाहब ! बाकी यह रद्दी खाना तो हम हर्गिज़ नहीं खायेंगे।"

"तो क्या दंगा-फिसाद करने का इरादा है ?"

"ज़रूरत पड़ने पर वह भी किया जा सकता है।"

"बहुत गरमी आगई है ?"

"जी हां, आपका गाय छाप वेजीटेबल और घास-भूसा गरमी ही तो लायगा !"

"घर क्या खाते थे ?"

"घर की बात छोड़िये सेठजी, वहां तो मां मिट्टी भी परोसती थी तो खा लेते थे। पर यहां तो मां नहीं है, आप हैं और पानी पिलाकर वजन तोला जाता है।"

"भई, तुम्हें तो अब रईसी ठाठ चाहिए, सो हम कहां से लायें ?"

"रईसी ठाठ ! सेठजी मैं आपको अच्छी तरह पहचानता हूं । देश मे बीस बरस पहले स्टेशन पर पकोड़ियां बेचा करते थे । आज यहा आकर दो-तीन मिलो के मालिक बन बैठे हो ? कहा मे आगई इतनी दौलत ? आपका यह रईसी ठाठ आपको ही मुबारक हो । मैं तो सिर्फ यही चाहता हूं कि हमे भोजन के नाम पर जहर न खिलाया जाय ।"

"अच्छा, क्लब में मुझसे अकेले मिलना । सब ठीक कर दिया जायगा ।"

तीन-चार दिन बाद ही सेठ ने रतुभाई को वह अमृत चखाया कि याद रहेगा । धान की खरीदारी में कुछ गडबड़ पाई गई और उस गड़बड़ मे रतुभाई की साजिश पकड़ी गई । काठियावाडी सेठ रतुभाई की गर्दन पर सवार होगया । रतुभाई ने सबकी उपस्थिति मे सेठ का जितना कुछ अपमान किया था, उससे सौ गुना ज्यादा सेठ ने उसे कलंकित किया और फिर उसे अकेले को अपने दफ्तर में ले गया । वहा मिल के मारवाड़ी हिस्सेदार जौहरमल सेठ के सामने उसकी पेशी हुई ।

एक आंख मिचकाते हुए मारवाड़ी सेठ ने कहा, "देखो मनेजर, एक दफे गलती कबूल कर लो । बस, पीछू हम ये मामला कू बंद कर देंगा ।"

"मंजूर क्या कर लूं ? झूठ-मूठ का कलक ! इसकी अपेक्षा तो मैं नौकरी छोड़ना ज्यादा पसंद करूंगा ।"

"तब तो हौर भी अच्छा; पगार ले जाणा ।"

"ले जाना कैसा ? अभी दे दीजिये ।"

"नांय, होपिस पर आके ले जाणे कू बोलता है ।"

"बहुत अच्छा ।"

रतुभाई ने वहां से नौकरी छोड़कर रहमान मिल मे कर ली ।

: ८ :

एक दिन वर्मा की इरावदी नदी के प्रति डॉक्टर नौतम का आदर-भाव यकायक बढ़ गया।

विवाह के पूरे पांच वर्ष बाद 'हथिनी हेम' पहली बार माता बनी और सो भी एक पुत्र-रत्न की।

एक बार फिर उनका दर्वाजा खुला और कोयल की कूक-सा मीठा स्वर सुनाई दिया, "बाबू ले !"

आगंतुक सोना चाची (ढो-स्वे) ही थीं।

इस बार उनके साथ उनकी पुत्री नीम्या भी थी। दोनों के हाथों में वर्मी छत्री, बेत की पिटारी, कारचोबी के रूमाल, भुजबंद, खिलौने, फूल आदि ऐसी ही कई चीजें थीं।

"बाबू ! मी मैमानी कांउडे महोला !" (तुम्हारी पत्नी का स्वास्थ्य तो अच्छा है न ?) प्रौढ़ा ने अपने स्नेह-सिक्त स्वर में पूछा।

"हाऊटे।" (अच्छा है।) डॉक्टर नौतम अब तो वर्मी भाषा बोलने-समझने लगा था, परंतु फिर भी 'हाऊटे' के 'ह' का वर्मी उच्चारण जो 'ह' और 'स' के बीच का था, अभी उससे सधा नहीं था।

"कांऊले प्यावां आंऊ।" (बच्चा तो दिखलाओ) नीम्या ने अधीर होकर कहा।

'हेम हथिनी' बच्चे को ले आई। बालक को देखते ही नीम्या लेकर उसे चूमने लगी और फिर भेंट की वस्तुओं का ढेर लगा दिया।

नीम्या अपनी मां से कहने लगी, "कांऊले तैल्हारे···नो !" (बहुत सुदंर है यह बालक।)

सुनते ही मारे डर के हेमकुंवर की छाती धड़कने लगी। कहीं नजर न लग जाय मेरे लाल को ! है भी तो चुड़ैल के दीदे जैसी !

सचमुच नीम्या का यौवन फटा पड़ रहा था।

बाजार घर से लगा हुआ था। वहां से जौहरी ब्लाक के ठीक पीछे ही दो-स्वे की दुकान थी। नीम्या अकसर दुकान से आकर हेमकुंवर के बच्चे को ले जाया करती थी।

बाजार मे दुकानो पर बैठनेवाली बर्मी युवतियां बच्चे को देखते ही "कांऊले तैल्हारे ! कांऊले तैल्हारे !" करती हुई उसको लेने के लिए आपस में छीना-झपटी करने लग जाती थी, और जब बालक घर पहुंचता तो या तो उसके गले में सोने की माला पड़ी होती या हाथ मे एकाध कङ्कण। खिलौनों की तो कोई गिनती ही नही थी।

एक दिन तो हेमकुंवर का जी अधर में ही लटका रह गया। उसके बच्चे को लेकर नीम्या जाने कहा गुम होगई। सारा शहर छान मारा, परंतु कहीं नीम्या का पता न चला। नीम्या को इतने दिनों से जानते हुए भी बच्चे की मां को वही पुरानी आशंका फिर से लौट आई। काम-रूप देश की उस कामिनी ने कहीं बच्चे पर कोई जादू-टोना न कर दिया हो ! पता नही, डाऊं[1] बना दिया या बर्मियो के चेहेते पशु सीं[2] की काया में मंत्रबल से उसके प्राण उतार दिये या क्या किया ? कहीं तोता बनाकर तो मेरे लाल को पींजड़े में न बंद कर दिया हो ?

डॉक्टर गौतम की मोटर शहर के सभी रास्तों और नदी के किनारे तक का चक्कर लगा आई। कहीं नीम्या का पता न चला।

नीम्या उस समय बच्चे को लेकर फाया-चाङ में बैठी थी और उसकी जांघ पर पवित्र गोदना गुदवाने की कोशिश कर रही थी।

"फया।" उसने विनयपूर्वक कहा। "इसकी जांघ पर बिल्कुल वही गोदना गोद दो जो मेरे मामा की जांघ पर था।"

---

[1] मोर पक्षी [2] हाथी

"तेरा मामा कौन ?"

"सयासान थारावाडीवाला !"

इस नाम को सुनते ही फुङ्गी चौंक उठा और उसने उससे कहा, "तू चली जा यहां से।"

"क्यों ? उस गोदने के प्रभाव से ही तो मेरे मामा बिल्ली की तरह जल्दी से बिना किसी तरह की आवाज किये इधर-से-उधर आ-जा सकते थे। उन्होंने सरकार की नाकों दम कर दी थी और कोई उन्हें पकड़ नहीं सका था। जानते हो न ?"

"अरी मूरख, मत ले उसका नाम यहां। सरकार को पता चल जायगा तो वह हमारी चमड़ी ही उधेड़ देगी।"

"अच्छा, तो जाने दो; परंतु कम-से-कम इसे चूने की एक अभिमंत्रित गोली तो खिला दो ताकि यह प्यारा बच्चा इतना वीर और अभय हो जाय कि इसके शरीर पर किसी भी घा की चोट असर न कर सके।"

वह बातें कर ही रही थी कि उसे अपनी पीठ पर किसी वस्तु के चलने का अनुभव हुआ और तुरंत ही कच-कच की आवाज सुनाई दी। उसने मुड़कर देखा तो एक दूसरा फुङ्गी हाथ में बड़ी-सी कैंची लिये खड़ा क्रोध और उपेक्षा से हँस रहा था।

"यह क्या किया ?" नीम्या ने पीठ पर हाथ फिराया तो उसकी एंजी काट डाली गई थी।

"शर्म नहीं आती ?" वह कैंचीवाला फुङ्गी डांटने लगा। "अभी तक महीन परदेशी वायल पहनती है ? भीड़ में यह लड़का तेरी एंजी का छोर पकड़कर खड़ा रहेगा तो खाली छोर फटकर इसके हाथ में रह जायगा और तू भीड़ के धक्के में जाने किधर निकल जायगी। बर्मी औरतो ! महीन परदेशी वस्त्रों का त्याग करो, डो बमा !" (हम लोग बर्मी हैं !)

नीम्या चुपचाप सिर झुकाकर उठ बैठी। सर्वत्र सिहनी की नाईं व्यवहार करनेवाली बर्मी नारी फुङ्गियों के सामने भीगी बिल्ली बन जाती थीं। फुङ्गी कैंची लेकर उनकी एंजियां काट डालते थे। ऐसे चित्रों का प्रदर्शन करते, जिनमें किसीके साथ प्रेम-क्रीड़ा करती हुई बर्मी

नारियां परियों के रूप में चित्रित की जाती थीं। वे अपने प्रेमी के साथ आसमान में उड़ती हुई दिखलाई जातीं और नीचे बालक खड़ा रोता हुआ चित्रित किया जाता था। उस बालक के हाथ में अपनी माता की एंजी का फटा हुआ टुकड़ा दिखलाया जाता था। वर्मी लोगों का विदेशी वस्त्रों का बहिष्कार इस सीमा तक पहुंच गया था।

नीम्या वहां से बच्चे को लेकर एक फोटोग्राफर के पास गई और उससे बोली, "झट से मेरे कांऊमे की ऐसी तस्वीर उतार दो कि देखने वाले चकित रह जाय !"

"अच्छा बैठो, झटपट इधर। अब बराबर सामने देखो। हां, ठीक है। एक, दो—खिंच गई तस्वीर, बस उठ जाओ।" वर्मी फोटोग्राफर ने चटपट काम निपटा दिया।

"क्या खाक एक, दो किया !" नीम्या खीज उठी, "न तो बच्चे को ठीक से बैठा पाई, न मैं ही तैयार हुई और मुए ने कह दिया एक, दो। खिंच गई तसवीर। तुम बर्मी फोटोग्राफर तसवीर खींचते हो कि भाड़ झोंकते हो !"

ऐसी पांच-सात जली-कटी बात सुनाकर वह वहां से पहुंची सीधी जापानी फोटोग्राफर के यहां।

झुक-झुककर स्वागत के मधुर शब्द बोलता हुआ जापानी फोटोग्राफर शांति से नीम्या और बच्चे की अभ्यर्थना करने लगा। सबसे पहले तो उसने बच्चे के हाथ में एक बिस्कुट पकड़ा दिया। फिर नीम्या को विभिन्न पोज दिखाकर विनय-पूर्वक पूछा, "इनमें से आपको कौन-सा पसंद है ?" पोज की पसंदगी के बाद कई तरह की पोशाकें उसके सामने रखकर पूछा, "कहिये, इनमें से कौन-सी पोशाक पहनकर फोटो खिंचवायेंगी ? यह बैठक पसंद है ? ये गमले यहां रख दूं ? लीजिये, इसकी गोद में ये खिलौने रख दीजिये। वाह, क्या कहने हैं ! मां और बच्चा दोनों ही कितने सुंदर हैं ! सौभाग्य से ही ऐसे मां-बेटों की अभ्यर्थना करने का हमें अवसर मिलता है।"

जब फोटोग्राफर ने अपनी गलत धारणा के अनुसार मां-बेटे का संबंध स्थापित कर दिया तो नीम्या को एक नशा ही चढ़ आया। गर्व

बात कहने का उसका मन ही नहीं हुआ। मन से माता बनकर उसने बच्चे को गोद में लिया और विभिन्न पोज़ों से फोटो उतरवाये। फिर जब वह डॉक्टर नौतम के घर की ओर रवाना हुई तो उसके पांव खुशी के मारे हवा में उड़ रहे थे। लेकिन वहां हेमकुंवर ने दो ही शब्दों में उसका नशा काफ़ूर कर दिया।

उस वक्त तो नीम्या क्षमा मांगकर लौट गई, परंतु दूसरे दिन फोटो-ले जाकर उसने हेमकुंवर का मुंह बंद कर दिया।

"मैंने तो तुमसे कहा ही था !" नीम्या शान से कहने लगी, कि "हमारे बर्मी फोटोग्राफर एकदम रद्दी होते हैं। ये जापानी लोग सचमुच बड़े अच्छे व्यवसायी हैं। कांकले भी कितना समझदार है। जानता था कि फोटो खींचा जा रहा है। समझदार बनकर मेरी गोद में बैठा रहा। मेरी गोद में बिलकुल जंच जाता है। और वह जापानी फोटो-ग्राफर तो बेचारा भुलावे में ही आ गया और सचमुच मुझे इसकी मां समझ बैठा।"

"तुझे कांकले अच्छा लगता है ?" हेमकुंवर ने मज़ाक किया।

"अच्छा, क्यों नहीं लगता है ? जरूर अच्छा लगता है। बहुत अच्छा लगता है। मैं कांकले को अपने मामा के जैसा बहादुर बनाऊंगी। इसकी जांघ पर मामा के जैसा ही बिल्ली का गोदना गुद वाऊंगी।"

"गोदता कौन है ?"

"हमारे फुङ्गी गोदते हैं। गोदकर मंत्र फूंक देते हैं। बस, फिर वह बिल्ली की तरह दौड़ता है और किसीके हाथ नहीं आता। न उसे कोई मार ही सकता है। मैं तो कांकले को ले भी गई थी, परंतु उन्होंने गोदा नहीं !"

"मैया री, तू उसे गोदना गुदवाने ले गई थी !" हेमकुंवर ने चौंक-कर कहा।

"हां तो ! इसे मेरे मामा सयासान जैसा शूर-वीर जो बनाना है। लेकिन फुङ्गी ने एक न सुनी। हमारे फुङ्गी जादू-टोने में तो एक ही हैं। वे एक-से-एक बढ़कर मंत्र जानते हैं। मामा को उन्होंने अजित बना दिया था। कोई चिन्ता की बात नहीं। अब तो मेरा बड़ा भाई

को-माऊ भी फुङ्गी बन गया है। उसीके पास से गोदना गुदवाकर अभिमन्त्रित करवा लेंगे।"

"मांऊ फुङ्गी बन गया ?"

"हां। घर से भाग गया और या गुंन जाकर फुङ्गी बन गया। चुपके-से फुङ्गी बना है। किसीको कानों-कान खबर नहीं। सिर्फ मुझे ही खबर दी है।"

शरीर-शोभा के लिए पेट काटकर बनाये हुए आभूषणों को बर्मी स्त्रियां पराये बालक पर न्योछावर कर देती थीं। बालक को खिलाने और प्यार करने में उन्हें असीम सुख के जो दो-चार स्वर्गीय पल मिल जाते थे, उनके मुकाबले में हेम-हीरक की कोई गिनती नहीं थी। फिर पृथ्वी को मानव-शिशुओं के अमूल्य आभरणों से अलंकृत करनेवाले फयाजी (प्रभुजी) क्या खुद भी उड़ाऊ नहीं थे ? यदि बर्मी नारी के अव्यक्त भावों को वाचा प्रदान की जाय तो ऐसी कई बातें सुनने को मिलेंगी।

बर्मी नारी को प्रेम और समर्पण-वृत्ति की यह विधि किसने प्रदान की है ? सहस्रधारा इरावदी की अटूट जलराशि ने सकड़ों मील घास के सीमाहीन जंगल फैलानेवाली भरी-पूरी वन-राजि ने, धान की मनो फसल देनेवाली वसुन्धरा ने या स्वयं बुद्ध भगवान ने ? सो तो स्वयं फया ही जानें !

: ९ :

सारे देश के समस्त मठों में खलबली मच गई थी।

हरएक मंदिर से लगे हुए पांच-दस मठ तो होते ही हैं, और प्रत्येक मठ में फुङ्गियों की काफी बड़ी संख्या रहती है। पीले कपड़े पहननेवाले और सिर मुंड़ानेवाले ये फुङ्गी बहुत ही विकराल होते हैं।

बर्मी लोग देवमूर्तियों पर सोने-चांदी के जो पतरे चढ़ाते हैं, वे इन फुङ्गियों की संपत्ति हैं। ये साधु लोग रेल आदि वाहनों का उपयोग कर सकते हैं, रुपये-पैसे अपने पास रख सकते हैं, और मनचाही चीजें खरीद सकते हैं। ये शास्त्र-चर्चा का सिर-दर्द मोल नहीं लेते। इंद्रिय सुख के प्रति इनकी कोई उपेक्षा नहीं। श्रद्धालु भक्त-जनों से ये प्रसन्न रहते हैं। इसका यह मतलब नहीं कि विद्वान् और विद्या-प्रेमी फुङ्गी हैं ही नहीं। हैं परंतु आटे में नमक के बराबर।

उन्होंने बर्मी अखबार पढ़े थे। सूरत के किसी पटेल नामक भारतीय मुसलमान द्वारा आज से सात वर्ष पूर्व प्रकाशित की हुई एक पुस्तिका उनके पास पहुंच गई थी। उस पुस्तिका में फुङ्गियों के आचार-विचार और चरित्र पर कसकर छींटाकशी और बहुत ही उग्र भाषा में बर्मी धर्म की निंदा की गई थी। इतना ही नहीं, उसमें इस्लाम की खूबियों का वर्णन और समर्थन भी था। भारतवर्ष में 'रंगीला रसूल' पुस्तक के लेखक ने जो आग लगाई थी, उससे कहीं भयंकर आफत इस पुस्तिका के लेखक ने बर्मा में अपने सजातीयों के लिए खड़ी कर दी। उस पुस्तिका को पढ़कर फुङ्गियों का गुस्सा भड़क उठा।

यागळ शहर में फुङ्गियों का जुलूस निकला। सारा शहर हिल उठा। जीवित मशालों जैसे इन साधुओं ने घर-घर में आग लगा दी। धर्म की, भगवान बुद्ध के पवित्र पथ की निंदा भरत वर्मी लोग बरदाश्त नहीं कर सके।

फुङ्गियों के जुलूस का रास्ता रोकने के लिए आई हुई सरकारी पुलिस के एक अंग्रेज सार्जेंट का वहीं सरेआम खून हो गया।

देशव्यापी साम्प्रदायिक दंगा और खून-खच्चर शुरू हो गया। वर्षों से संचित मतमुटाव के बारूदखाने में चिनगारी लगा दी गई।

"मुसलमानों और जेरबादियों को जहां भी पाओ, काटकर टुकड़े कर दो। स्त्री, बच्चे और बूढ़ों में भेद न किया जाय।" यह था अपने लिए वर्मी लोगों का आदेश।

और सारे वर्मा में था की तांडव-लीला शुरू होगई। वर्मी और जेरबादी मोलमीन से मांडले तक, शहर-शहर और गांव-गांव एक दूसरे को खोज-खोजकर कत्ल करने लगे। मछली काटनेवाली धार आदमियों के गले रेतने लगी।

वर्मियों का दूसरा आदेश था, "मुसलमान के सिवा और किसीको हाथ मत लगाना।"

उधर जेरबादियों का नारा था, "वर्मी लोगों के सिवा और किसी को हाथ मत लगाना।"

यों हिंदू दोनों ओर से सुरक्षित थे। वे खून की बहती धारा में से सुरक्षित निकल आ सकते थे। लेकिन हत्या करने पर उतारू लोगों को यह खयाल ही कहां रहता है कि कौन हिंदू है और कौन काका,[1] इसलिए हिंदू लोग भी अपने घरों में दुबके बैठे थे। उनके वर्मी पड़ोसी उनकी रक्षा कर रहे थे।

दंगा शुरू होने के समय रतुभाई यागळ में था। पुरानी मिल छोड़कर इन दिनों वह रहमान राइस मिल में काम करने लगा था। उसे हठात् पुरानी मिल में काम करनेवाले एक मुसलमान का खयाल

[1] वर्मा में मलबार के मोपला मुसलमानों को 'काका' कहते हैं।

: ६ :

सारे देश के समस्त मठों में खलबली मच गई थी।

हरएक मंदिर से लगे हुए पांच-दस मठ तो होते ही हैं, और प्रत्येक मठ में फुङ्गियों की काफी बड़ी संख्या रहती है। पीले कपड़े पहननेवाले और सिर मुंड़ानेवाले ये फुङ्गी बहुत ही विकराल होते हैं।

बर्मी लोग देवमूर्तियों पर सोने-चांदी के जो पतरे चढ़ाते हैं, वे इन फुङ्गियों की संपत्ति है। ये साधु लोग रेल आदि वाहनों का उपयोग कर सकते हैं, रुपये-पैसे अपने पास रख सकते हैं, और मनचाही चीजें खरीद सकते हैं। ये शास्त्र-चर्चा का सिर-दर्द मोल नहीं लेते। इंद्रिय सुख के प्रति इनकी कोई उपेक्षा नहीं। श्रद्धालु भक्त-जनों से ये प्रसन्न रहते हैं। इसका यह मतलब नहीं कि विद्वान् और विद्या-प्रेमी फुङ्गी हैं ही नहीं। हैं परंतु आटे में नमक के बराबर।

उन्होंने बर्मी अखबार पढ़े थे। सूरत के किसी पटेल नामक भारतीय मुसलमान द्वारा आज से सात वर्ष पूर्व प्रकाशित की हुई एक पुस्तिका उनके पास पहुंच गई थी। उस पुस्तिका में फुङ्गियों के आचार-विचार और चरित्र पर कसकर छींटाकशी और बहुत ही उग्र भाषा में बर्मी धर्म की निंदा की गई थी। इतना ही नहीं, उसमें इस्लाम की खूबियों का वर्णन और समर्थन भी था। भारतवर्ष में 'रंगीला रसूल' पुस्तक के लेखक ने जो आग लगाई थी, उससे कहीं भयंकर आफत इस पुस्तिका के लेखक ने बर्मा में अपने सजातीयों के लिए खड़ी कर दी। उस पुस्तिका को पढ़कर फुङ्गियों का गुस्सा भड़क उठा।

यामळ शहर मे फुङ्गियों का जुलूस निकला। सारा शहर हिल उठा। जीवित मशालों जैसे इन साधुओं ने घर-घर में आग लगा दी। धर्म की, भगवान बुद्ध के पवित्र पंथ की निंदा भरत वर्मी लोग बरदाश्त नहीं कर सके।

फुङ्गियों के जुलूस का रास्ता रोकने के लिए आई हुई सरकारी पुलिस के एक अंग्रेज सार्जेंट का वहीं सरेआम खून हो गया।

देशव्यापी साम्प्रदायिक दंगा और खून-खच्चर शुरू हो गया। वर्षों से संचित मनमुटाव के बारूदखाने में चिनगारी लगा दी गई।

"मुसलमानों और ज़ेरवादियों को जहां भी पाओ, काटकर टुकड़े कर दो। स्त्री, बच्चे और बूढ़ों में भेद न किया जाय।" यह था अपने लिए वर्मी लोगों का आदेश।

और सारे बर्मा में धा की ताडव-लीला शुरू होगई। वर्मी और ज़ेरवादी मोलमीन से मांडले तक, शहर-शहर और गांव-गांव एक दूसरे को खोज-खोजकर कत्ल करने लगे। मछली काटनेवाली धा आदमियों के गले रेतने लगी।

वर्मियों का दूसरा आदेश था, "मुसलमान के सिवा और किसीको हाथ मत लगाना।"

उधर ज़ेरवादियों का नारा था, "वर्मी लोगों के सिवा और किसी को हाथ मत लगाना।"

यों हिंदू दोनों ओर से सुरक्षित थे। वे खून की बहती धारा में से सुरक्षित निकल आ सकते थे। लेकिन हत्या करने पर उतारू लोगों को यह खयाल ही कहां रहता है कि कौन हिंदू है और कौन काका,[1] इसलिए हिंदू लोग भी अपने घरों में दुबके बैठे थे। उनके वर्मी पड़ोसी उनकी रक्षा कर रहे थे।

दंगा शुरू होने के समय रतुभाई यामळ में था। पुरानी मिल छोड़कर इन दिनों वह रहमान राइस मिल में काम करने लगा था। उसे हठात् पुरानी मिल में काम करनेवाले एक मुसलमान का खयाल

[1] वर्मा में मलबार के मोपला मुसलमानों को 'काका' कहते हैं।

आया। उस बेचारे की जान जोखम में है। हिंदू होने के कारण रतुभाई तो सुरक्षित था। वह घर बैठा न रह सका। उसने जेटी पर आकर अपने मित्र की लाश तलाश करना शुरू की। लाश तो वहीं थी, परंतु उसके वाहक उसे छोड़कर भाग गये थे। किराये की कई सम्पानें पानी पर कमल की तरह हिलोरें ले रही थीं।

"क्यों भई, चलेगा खनान टो ?" उसने एक सम्पानवाले को आवाज़ दी।"

"हां बाबू, लावा !" बर्मी मल्लाह खुशी-खुशी दौड़ा आया और सम्पान रतुभाई को लेकर इरावदी में बहने लगी।

नदी से होकर कोई दो-एक मील का रास्ता था। सम्पान में सिर्फ दो ही आदमी थे, एक रतुभाई और दूसरा बर्मी मल्लाह ! रतुभाई कोट-पतलून पहने और टोप लगाये था। मल्लाह कमर में लुंगी और सिर पर धांऊ-बांऊ बांधे था। उसकी छाती गजभर चौड़ी और गेंडे के चमड़े के समान मजबूत थी। डांड़ चलाने में उसकी भुजाओं की मांस-पेशियां मछली की तरह उछल रही थीं।

वे दोनों एक-दूसरे के आमने-सामने थे। रतुभाई इरावदी की मझधार में, वहां की गंभीर निर्जनता में कुछ देख रहा था और मल्लाह सम्पान के तहखाने में से कुछ ढूंढ़ रहा था।

दूसरे ही क्षण मल्लाह के हाथ में धा चमक उठी।

"क्यों भई !" रतुभाई ने मज़ाक-ही-मज़ाक में पूछा, "यहां न तो कोई मुसलमान है और न कोई ज़ेरवादी ही। आस-पास कोई दूसरी सम्पान भी तो नहीं है। यह धा तूने क्यों निकाली ?"

"मीं काका, मीं खो तो कला।" मल्लाह ने उत्तेजित हुए बिना उत्तर दिया। रतुभाई ने उसकी आंखों में खून उतरते देखा।

"मीं काका ! तू मोपला मुसलमान है। मीं खो तो कला (तू बंगाली मुसलमान है !)

'कला' का अर्थ है समुद्र पार से आनेवाला हिंदुस्तानी और 'खो तो' यानी बारम्बार। 'कोथाय' (कहां) शब्द बोलनेवाला बंगाली या चटगांव की ओर का मुसलमान।

इरावदी के गंदले पानी पर बही जाती सम्पान पर बोले गये इन बोलो ने और मल्लाह की लोह पकड़ में उठी हुई धा ने रतुभाई को बिल्कुल मौत के सामने ला खड़ा किया। वह अच्छी तरह जानता था कि बर्मी की धा हाथ मे आते ही तत्क्षण वार करती है।

"तू गलती कर रहा है, मल्लाह।" रतुभाई ने बिना विचलित हुए उत्तर दिया, "मैं हिंदू हूं।"

"नही, तू काका है। तेरी पोशाक हिंदुओं की नही।" धा उठ रही थी।

"यह पोशाक तो सभी पहनते हैं।" रतुभाई की छाती जोरों से धड़क रही थी।

"चोटी बतला।"

"सभी हिंदू चोटी नही रखते।"

"अच्छा, तो जनेऊ बतला।"

"अरे भाई, जनेऊ भी कुछ ही हिंदू पहनते हैं।"

"तो पतलून खोलकर दिखला।"

"क्यों ?" रतुभाई उसका आशय नही समझ सका।

"देखने दे सुन्नत[1] है या नही।" उस इस्पात की तरह कठोर और ठंडे मल्लाह ने कहा।

"अरे भाई, मैं तुझसे सच कहता हूं कि मेरे सुन्नत नही है। मुझे नंगा करके देखने का आग्रह छोड़ दे। मेरी बात का विश्वास कर। यदि तुझे मेरे कहे का विश्वास न आता हो तो मुझे नाव मे ही बांधकर पटक देना और तू सनानटो की किसी भी मिल में जाकर सच-झूठ का पता लगा आना। वहां जाकर मेरा नाम कहना और पूछना कि रतुभाई हिंदू है या मुसलमान। इतने पर भी जो तुझे विश्वास न आये तो फिर आकर भले ही मुझे मार डालना। तब तुझे कोई रोकनेवाला नही। सनानटो

---

[1] कहते हैं, इस दंगे में बर्मी हिंदू-मुसलमान का निश्चय करने के लिए लोगों को नंगा करके देखा करते थे। कई हिन्दू, जिन्हें उपदंश की बीमारी थी, सुन्नत वाले मुसलमान समझकर मार डाले गये।

में सभी मेरा नाम जानते हैं। मैं वहां की चौथी मिल में मैनेजर हूं। तू पहली मिल में ही जाकर पूछ आ, नहीं तो मुझे मार डालने के बाद, मेरे शव को नंगा करके देखने पर, जब तुझे असलियत का पता चलेगा तो, सिवा पछताने के और कुछ भी तेरे हाथ नहीं लगने का। तब बात तेरे हाथ से निकल जायगी।"

मल्लाह एक अनिश्चय में पड़ गया। थोड़ी देर के बाद उसने कहा, "तो नंगा होने में तेरा क्या जाता है ?"

"अरे भाई !" रतुभाई ने पाया कि उसकी बात कुछ असर कर रही है तो और समझाते हुए कहा, "हम हिंदू हैं। किसीके आगे नंगा होना हमारे धर्म में महापाप है। हम उन माताओं की संतान हैं, जिन्होंने आततायियों के आगे नंगे होने की बजाय जीवित जल मरना ज्यादा पसंद किया। हम तेरे उस प्रभु परमेश्वर गौतम के देशवासी हैं, जिसने जीव-मात्र पर दया करने का उपदेश दिया था। हम गुजराती हैं। चींटी तक को मारना हमारे यहां पाप समझा जाता है। किसीके आगे नंगा होना या किसीको नंगा करना हमारे धर्म में महापाप है।"

"तू बड़ी मीठी वर्मी भाषा बोलता है," मल्लाह ने अपना उठा हुआ हाथ झुकाते हुए कहा, "आज सुबह से मैंने इसी सम्पान में पांच काकाओं को काटकर इरावती में फेंक दिया, पर तू छठवां मेरा उस्ताद निकला।"

"अरे भाई मैं तो हिंदू हूं। पर मान ले कि मैं मुसलमान ही होता तो भी मुझे मारने से तुझे क्या मिल जाता ?"

"ढम्मा !" नाविक ने सिर्फ एक शब्द कहा।

"धर्म !"

"हां, बौद्ध का ढम्मा ! गोढमा का ढम्मा !"

"नहीं भाई, वह धर्म गौतम बुद्ध का धर्म नहीं। कहीं किसीने गलती की है और तुझे गलत समझाया है। अर्हन्त गौतम का धर्म तो है भूत-मात्र पर दया करना। खैर अब तू मुझे पहली मिल में ही उतार दे।"

"नहीं बाबूले, अब तो मैं तुझे तेरी मिल में ही पहुंचा आऊंगा। अब डरने की जरूरत नहीं।"

"देखना, कहीं कनीकमा मलोवाने ?" (दगा तो नहीं देगा)।

"नहीं, तेरे साथ कनीकमा नहीं मारूंगा। मुझे विश्वास हो गया कि तू काका मा खो तो कला नहीं है तू बाबू है, और तेरा बाल भी बांका नहीं होने दूंगा। फया सु।"

"फया सु" कहने के बाद बर्मी दगा नहीं देता। राम-नाम की तरह बर्मियों के लिए फया सु सबसे बड़ी शपथ है।

"ठीक, तो फिर मुझे पहली मिल में ही उतार दे।"

"क्यों ?"

"जानता है, चौथी मिल किसकी है ?"

"जानता हूं बाबू, वह खो सो कला की है, तू वहां काम करता है ?"

"हां भाई, वह मुसलमान मालिक हमारे हिंदू मालिकों की अपेक्षा बहुत ही उदार और सज्जन है। लेकिन मैं तुझे वहां नहीं ले जाऊंगा।"

"क्यों ?"

"पता नहीं, वहां का कोई मुसलमान तेरे साथ कैसा सलूक करे। तूने मुझे प्राणदान दिया है; पर यदि दूसरे तुझे न दें तो मैं तो कहीं मुंह दिखलाने लायक भी नहीं रह जाऊंगा। इसलिए मुझे पहली मिल में ही उतार दे।"

पहली मिल के घाट पर उतरकर रतुभाई ने मल्लाह से कहा, "चल, नाश्ता तो कर ले।"

"नहीं, बाबू !" मल्लाह का मुंह उतर गया।

"चल भी, यहां कोई तुझे हाथ नहीं लगायेगा। मैं साथ हूं। फिर यहां एक भी मुसलमान नहीं। मैं चाहता हूं कि तू कुछ खा ले।"

"कलीकमा मलो वाने !" अब की मल्लाह की बारी थी।

"फया सु !" रतुभाई ने सौगंध खाई।

घाट-किनारे सम्पान बांधकर रतुभाई मल्लाह को लेकर जौहरीमल दामजी राइस मिल में आया। उसे खाना खिलाया और जब इनाम देकर रवाना किया तो पीछे की ओर से किलकारियां लग रही थीं,

"काका को मारो ! फुंगी को मारो !"

"अली कहां है ?" रतुभाई ने मिल के अपने पुराने साथियों से यही पहला प्रश्न पूछा ।

"शिवशंकर उसे अपने घर ले गये हैं ।"

"और अली की वर्मी औरत ?"

"वह भी साथ गई है ।"

यह सुन रतुभाई चिंतित हो उठा ।

: १० :

रतुभाई फुर्ती से शिवशंकर के घर की ओर चल पड़ा।

रक्तपात और हो-हल्ले के बीच में रास्ता बनाता हुआ वह चला जा रहा था। उसकी छाती धड़क रही थी; परंतु चेहरे को वह किसी तरह संयत किये रहा।

जैसे-जैसे शिवशंकर का घर पास आता गया, उसकी घबराहट और चिंता भी बढ़ती गई। दंगे का सबसे ज्यादा जोर उसी मुहल्ले में था। जिधर देखता, छुरे चमकते दिखलाई देते। शोर-गुल भी उधर से ही आ रहा था। इंद्रलोक को मात करनेवाला यह देश साक्षात् रौरव नरक बन गया था।

शिवशंकर के घर के समीप पहुंचते ही रतुभाई के पांव तले की धरती खिसक गई। लोगों की एक बड़ी-सी भीड़ हाथों में धा लिये हुए घर के सामने खड़ी थी। दरवाजे के ठीक सामने धार्मिक जोश में अंधा हो रहा एक फुंगी, जो शायद उस भीड़ का मुखिया था, अंदर घुसने की कोशिश कर रहा था और शिवशंकर हाथ जोड़कर विनयपूर्वक उसे रोक रहा था।

"हट जा सामने से !" फुंगी ने धा तानते हुए कहा, "इसी घर में घुसा है वह काका।"

"दया के नाम पर लौट जाओ, मेरी बेइज्जती मत करो।"

"तोड़ डालो, काट डालो, आग लगा दो इस घर को।" भीड़ में से रह-रहकर आवाजें आ रही थीं, मानो वे अपने मुखिया से तुरंत कुछ-न-कुछ करने की स्वीकृति मांग रहे थे।

रतुभाई पास पहुंच गया था, लेकिन फुंगी का चेहरा उसे दिखलाई

नहीं पड़ रहा था। भीड़ उस फुंगी के पीछे एक जबर्दस्त घेरा डाले खड़ी थी।

हठात् रतुभाई को लगा कि फुंगी की आवाज पहचानी-सी है। कहीं सुनी है यह आवाज, पर उसे ठीक से याद नहीं आ रहा था।

फुंगी शिवशंकर को एक ओर धकेल ऊपर चढ़ने लगा। शिवशंकर लड़खड़ाकर जमीन पर गिर पड़ा। यदि क्षणभर की भी देर हो जाती तो वह भीड़ के पांव तले कुचल जाता। परंतु उसके गिरते ही एक औरत तीर की तरह लपककर नीचे उतर आई और हाथों से रोकते हुए बोली, "निरवां बा फया ! निरवां बा !" (शांत होओ, महात्मन्, शांत होओ और दया करो।)

परिचित शब्द सुनते ही फुंगी का आगे बढ़ना रुक गया। उसने चौंककर कहा, "कौन..."

"हाउ के मांऊ !" (वही है मांऊ, वही है।)

'मांऊ' शब्द ने रतुभाई की स्मृति को भी थोड़ा धक्का दिया।

फुंगी ने उस स्त्री की ओर देखा। गुजराती ढंग की साड़ी ओढ़े, खुले बालों और कपाल में कुंकुम की टिकुलीवाली वह औरत कौन है? चेहरे की आकृति बर्मी, स्वर मानो इरावदी के अतल तल से उठनेवाले कल-कल निनाद-सा और ध्वनि ब्रह्मदेश के प्यारे और पुनीत डाक[1] के केकारव-सी गहन और मधुर तथा चपटी नाक और सपाट छातीवाली यह औरत कौन है?

उसकी उठी हुई धा नीचे झुक गई।

"पहले उन्हें उठाओ, को-मांऊ ! वह मेरे पति हैं।" उस औरत ने नीचे गिरे हुए शिवशंकर की ओर इशारा किया।

इस समय तक रतुभाई शिवशंकर के समीप पहुंच गया था। उसे देखकर शिवशंकर ने प्रसन्नता से कहा, "रतुभाई, तुम आ गये ?"

रतुभाई का नाम सुनकर उस औरत ने साड़ी ठीक की। पति उसे रतुभाई के बारे में बतला चुका था। एक बार घर आये थे तो वह देख

---

[1] मयूर

भी नहीं सकी थी। फिर आने का वचन दे गये थे। आज ठीक मौके पर आ गये हैं।

"अब तुम अकेले ऊपर आओ, फया!" उस स्त्री ने फुंगी से कहा, "और तब जिसे ढूंढ़ने आये हो उसे लेते जाना।"

रतुभाई ने फुंगी वेशधारी माऊ को देखा। देखते ही पहचान गये। अरे, यह तो पीसनेवाली सोना चाची का मांऊ मांऊ है, 'डो बमा' वाला तखीन पार्टी का अनुयायी। उस रात डॉक्टर नौतम के यहां देखा था। यहां कहां से? फुंगी कब हो गया? और यह औरत इसे कहां से पहचानती है?

भीड़ अपने-आप जरा पीछे हट गई और फुंगी, शिवशंकर और रतुभाई ऊपर चढ़ गये।

"कहीं उसके साथ विश्वासघात तो नहीं करेंगे?" भीड़ में से एक बर्मी अनुयायी ने सहज शंका प्रदर्शित की।

"ताकत है किसीकी?" दूसरे ने कहा, "यह हैं सयासान धाराबाड़ी वाले के संबंधी। इन्होंने भी सयासान की तरह अपनी पीठ पर अभयचिह्न अंकित करवा रखा है। किसी घा की चोट इनपर असर नहीं कर सकती।"

"घा की चोट असर न करे, परंतु कोई बांस की नोक ही घुसेड़ दे तो?"

बर्मी लोगों का विश्वास है कि फुंगी यदि मनुष्य के शरीर पर कुछ खास चिह्न गोदकर उन्हें अभिमन्त्रित कर दें तो उसपर किसी भी हथियार की चोट असर नहीं करती। तब वह सिर्फ बांस की नोक के द्वारा ही मारा जा सकता है। बांस पर किसी मंत्र या जादू-टोने का असर नहीं होता।

"कैसी पागलपन की बातें करते हो!" तीसरे आदमी ने कहा, "हमें ठों खिलानेवाला क्या यों ही कच्चा-पोचा आदमी है?"

ठों कहते हैं चूने की अभिमन्त्रित गोली को। दंगे के समय फुंगी भीड़ में के प्रत्येक व्यक्ति को ठों खिला देते थे और लोगों का विश्वास यह था कि ठों खा लेने के बाद उन्हें किसी तरह की चोट नहीं लग सकती।

वहां ऊपर गुजराती पोशाकवाली उस बर्मी स्त्री ने पूरी तरह

तनकर कहा, "को-मांऊ, क्यों अब तो पहचाना मुझे ?"

"तू यहां ?"

"हां, यहीं हूं। उस रात तुम्हारे विचार जान लेने के बाद मेरा रास्ता तुम्हारे रास्ते से जुदा हो गया। मैं तुम्हारी पत्नी नहीं बन सकी। अब एक बाबू की पत्नी बनी हूं। तुम छोड़..."

"लेकिन यहां पहुंची किस तरह ?"

"चावल-मिल में मजूरी करती थी। खैर, जाने दो उस बात को। लेकिन अब तुम्हारा विचार क्या है ?"

"उस काका को, उस स्त्री तो कला को बाहर निकालकर मेरे हवाले करो।"

"ठहरो को-मांऊ।" वह स्त्री घर में जाकर लौट आई। उसके हाथ में धा थी। फुंगी को धा दिखलाकर उसने कहा, "यहां तो जगह संकरी है। चलो, नीचे चलें। एक बार हम दोनों के दो-दो हाथ हो जायं। जब मैं मरकर तुम्हारे चरणों में गिर पड़ूं, तुम खुशी से अपने अपराधियों को ले जाना।"

अपने सामने एक नारी को हथियार उठाते देख वह युवक फुंगी का निश्चय डिग गया। उसने पूछा, "कौन हैं वे ?"

"हैं मेरे ही जैसे। मर्द कला है और नारी बर्मी। और प्रेम है उनका इष्टदेवता। हम बर्मी स्त्रियां प्रेम को सर्वोच्च स्थान देती हैं। हम कुल और लोकलाज, जाति और वर्ग, माता-पिता की इच्छा और उनका दबाव, धन-दौलत और हीरे-जवाहरात किसीके भी आगे झुकना नहीं जानतीं। इस औरत ने भी वही किया है। इसने एक मुसलमान के साथ शादी की है, लेकिन पर्दानशीन बीवी बने रहने के लिए नहीं। वह आजाद है। उसने अपने धर्म का परित्याग कर दूसरे का धर्म अंगीकार नहीं किया है। वह उपासिका है बर्मा के सर्वश्रेष्ठ और सर्वोपरि धर्म—प्रेम-धर्म की। यदि इसे ही अपराध कहते हो तो वे अवश्य दंड के भागी हैं, लेकिन उन्हें दण्ड देने से पहले या तो तुम न रहने पाओगे या मैं न रहूंगी।"

फुंगी ने अपने दोनों हाथ पीठ के पीछे कर लिये। धा वहीं झूलती

रही। उसने कहा, "पढ़ी-लिखी होकर भी तू देश के जीवन-मरण के प्रश्न को नहीं समझती।"

"पहले उन फुङ्गियों को समझाओ उभी! जाकर कहो उनसे कि पहले देश को समझें। सिर्फ देह की उपासना करना छोड़ें धम्मा! यह घा तुम्हारे हाथों के लिए नहीं है। तुम्हारे करों में तो होनी चाहिए शांति की, अहिंसा की और अभय की मुद्रा।"

"अच्छा, तो मैं जाता हूं।"

"जाओ फया। चरणों में मेरा शत-शत प्रणाम। एक बार के हमारे स्नेह का पढाऊ वृक्ष आज हमारी करुणाधारा से सींचा जाकर नये सिरे से लहलहा उठे। क्षणभर रुक तो जाओ।"

वह अंदर जाकर पालने में से अपने नवजात शिशु को उठा लाई और उसे साधु के चरणों में रख दिया।

फुंगी के मुंह से आशीर्वाद का शब्द नहीं निकला। लेकिन उसके कठोर चेहरे पर पहली बार कोमलता की रेखाएं फूटती दिखाई दीं।

"थोड़ा और ठहर जाओ।" और वह अंदर जाकर चटगांव के अली और उसकी बर्मी पत्नी को भी बाहर बुला लाई।

"इनका प्रणाम भी स्वीकार करो धर्मपाल! और देखो, इनके चेहरों की ओर। दिखाई पड़ता है यहांपर धर्म और जाति का कोई चिह्न?"

"जानता हूं", फुंगी ने कहा, "इस समय तो यह कला काका अल्ला की गाय बन गया है, लेकिन एक दिन यही यहांपर अपना विनाशकारी बीज जेरबादी बालक के रूप में छोड़ जायगा। आज यह अमृत है, कल इसीकी संतान विषरूप होकर हमारे जीवन को हलाहल बना देगी। तुम स्त्रियों को प्यारा है तुम्हारा स्नेह-स्वातंत्र्य। मेरे लिए सर्वोपरि है देश का देह-स्वातंत्र्य, देशवासियों की रक्त-शुद्धि।"

"यही है हमारा मतभेद। इसीपर तो हम अलग हुए थे।"

"आज भी इसी मतभेद को लेकर हम एक-दूसरे से विदा हों। मैंने तो इस पाप का मूलोच्छेद करने के लिए जीवन ही समर्पित कर दिया है।"

"ठीक है, लेकिन क्या हत्या के द्वारा उसका मूलोच्छेद कर सकोगे ? ांच को मारोगे, पचीस-पचास को मारोगे…लेकिन कहांतक ?"

"ज्यादा वात करना व्यर्थ है। लेकिन आज मेरी हार हुई है। अव जाता हूं।"

इतना कहकर फुंगी नीचे उतर गया और भीड़ को अपने साथ दूर ाता गया। जाते-जाते जनसमूह वादलों की गरजना के समान 'डो वमा' प्रचंड घोप की प्रतिध्वनि छोड़ता गया।

उसके वाद शिवशंकर की पत्नी पानदान ले आई। घुटनों के वल ठकर उसने रतुभाई को नमस्कार किया और पानदान उसके सामने ख दिया। रतुभाई अभी तक वच्चे की ओर ही देख रहा था। उसने शवशंकर से पूछा, "इसे गुजराती वनाने का इरादा है या वर्मी ?"

"वर्मी।"

"नहीं यह तो वावू ही वनेगा।" स्त्री ने मधुर कंठ से कहा।

"लेकिन कोई गुजराती इसे अपनी लड़की देने को तैयार नहीं होगा।"

"पच्चीस वर्ष के वाद भी ?" स्त्री हँस दी।

"दुनिया भले ही वदल जाय, लेकिन पच्चीस वर्षों के वाद भी हममें परिवर्तन नहीं होगा।"

"लेकिन यहां से गुजरात जाना ही किसे है ?" शिवशंकर तो जैसे कसम ही खा रहा था।

"यदि इन 'डो वमा' वालों का राज्य हो गया और वे कानून वनाकर निकाल वाहर करें तव ?"

"तव भी नहीं जायंगे।" शिव ने दृढ़ निश्चय से कहा।

"हम वर्मी लोग कभी इतनी दूर की चिंता नहीं करते।" शिव की पत्नी ने कहा।

"विल्कुल वच्चे जैसे !" रतुभाई ने कहा।

"वड़ी मधुर होती है यह अवस्था।" गृहिणी ने कहा, "धौल जमाकर रुलानेवाले की ही गोद में वैठकर क्षणभर वाद खेलना शुरू कर देते हैं।"

"परंतु तुम्हारी घा तो साथ-साथ लगी ही रहती है।"

"यही तो हमारा बचपन है। घा न होती तो हमारा प्रेम और हमारा अलबेलापन भी कहा होता ?"

"अच्छा, आज खाना तो खिलाओगी न ?"

"वाह, यह भी कोई पूछने की बात है। बात-की-बात में रोटिया सेंके देती हूं।"

"अच्छा, तो रोटिया भी पकाती हो ? तब तो खो गया वह बचपन।"

"क्यों ?"

"हडिया मे एक साथ पानी और चावल डालकर उसे चूल्हे पर चढा देना और बाहर मटरगश्ती के लिए निकल जाना, फूल और आभूषण खरीदते फिरना यह सब कहा गया ?"

"लेकिन रोटी बनाने की सभी क्रियाएं तो ठीक बालक की क्रीडाओं के समान ही हैं। मैं कुछ इन्हें गुजराती खाना खिलाने की नीयत से रोटियां नही बेलती हूं। मैं तो खुद बालक बनकर रोटियों के साथ खेलती हूं।"

"शिवा !" रतुभाई ने गुजराती मे कहा, "बडी फक्कड तबीयत की स्त्री मिली है तुझे।"

"होगी, मैं तो इस बारे मे कभी कुछ सोचता ही नहीं। यहा तो चैन से कटती है।"

"तू तो बिलकुल बर्मी बन गया। देखना कही काम-धधा मत छोड बैठना।"

"वही तो रास्ता देख रहा हूं कि यह कब कमाना शुरू करती है।"

"क्या कोई धधा शुरू किया है ?"

"हा, यह अपनी मा की दुकान सभालनेवाली है। शुरू कर दे तो मैं चैन से नीद लूं और आराम से बैठा-बैठा सलें[1] फूका करू। भारत मे तो हम लोग अकेले कमा-कमाकर हैरान हो जाते है। मरने दम तक [illegible]

[1] चुरुट

से बैठना नसीब नहीं होता। औरतें हमारी कमाई पर मजे से साज सजती और बैठी बच्चे जना करती हैं। इस मानी में तो मैं सचमुच निहाल होगया।"

"अच्छा, लेकिन अब तो इन दोनों को ठीक-ठिकाने से पहुंचाओ!" रतुभाई ने घबराये हुए अली और उसकी पत्नी को लक्ष्य कर के कहा।

"नहीं," शिव की पत्नी ने कहा, "ये लोग यहीं ज्यादा सुरक्षित हैं। हम दोनों बर्मी औरतें हैं। अड़ोस-पड़ोस में ऐसा कोई सुरक्षित स्थान भी नहीं है। फिर इतनी जानकारी हो जाने पर कि फुंगी यहां आकर लौट गये हैं अब कोई नहीं आयगा। इतने पर भी यदि मरना ही हुआ तो सब साथ मरेंगे।"

"परंतु अकेले अली को…"

"नहीं जनाब, बंदा यहां से अकेला एक कदम भी बाहर नहीं निकालने का। अब मैं अकेले जीकर भी क्या करूंगा?" अली बोल उठा।

फिर शिव की पत्नी ने खाना पकाया और सबने साथ बैठकर खाया। खाकर उठते समय रतुभाई ने शिव से गुजराती में पूछा, "क्यों, उस मांऊ और तेरी पत्नी का पहले कोई संबंध था क्या?"

"हां, इसने मुझे बतला दिया था। कोई बात मुझसे छिपाई नहीं। दोनों रंगून में पढ़ते थे। मांऊ कालेज में था और यह हाईस्कूल की सातवीं कक्षा में। धीरे-धीरे मांऊ उग्ररूप से उद्दामवादी विचारों का हो गया। इससे कहने लगा कि तू नाचा मत कर। इसने कहा कि नृत्य तो मेरे रक्त की बूंद-बूंद में है। यहां नटराज फो-संई अपने दल-बल के साथ आया तो मांऊ ने इसे उसका तिजाम-प्वे[1] देखने जाने की मुमानियत कर दी। उसकी आज्ञा का उल्लंघन करके यह तिजाम-प्वे देखने आई थी। मैं भी गया था। वहीं हम दोनों की पहली बार मुलाकात हुई, फिर यह हमारी चावल-मिल में थोड़े दिन मजूरी करने आई। वहां चावल सुखाने की प्लेट पर हमारा परिचय गहरा हुआ।"

---

[1] इंद्र-इंद्राणी का भाव-नृत्य नाटक

: ११ :

मै ई मा मयु
भे मै ई मा मा मयु
लें श्रा नाभा प्येभव भारे दु
शाफ वे सों जा
यां गून मयोदु

—एक वर्मी लोकगीत

श्रर्थात्—मैं ऐसी स्त्री के साथ शादी करूंगा। तू कैसी स्त्री के साथ शादी करेगा? जो स्त्री पंच कर्मों का पालन करनेवाली होगी, उसको मैं यांगून (रंगून) में से ही खोज निकालूंगा।

इधर कुछ दिनों से नीम्या ने डॉक्टर नौतम के यहां श्रपनी शकल तक नहीं दिखलाई थी। उनका बच्चा बल्ला दिनभर श्राकर सीढ़ियों पर खड़ा हो जाता श्रौर नीम्या के श्राने की राह देखता रहता। उसे बाजार में जाकर दुकान-दुकान फिरने श्रौर वर्मी श्रौरतों के पास खेलने की श्रादत पड़ गई थी। श्रब तो हेमकुंवर को भी विश्वास होगया था कि इन दो वर्षों में न तो पति को किसीने बकरा या तोता बनाया श्रौर न बल्ला को ही उन युवती किन्नरियों की नजर लगी, इसलिए उसे भी नीम्या का गुम हो जाना श्रच्छा नहीं लग रहा था। नीम्या के न श्राने से वह सचमुच ही बेचैन होगई थी। श्रब तो वह भी धड़ल्ले से वर्मी बोल लेती थी। नीम्या को साथ लेकर शहर के बाजारों में घूम श्राती थी। नीम्या के साथ रहने पर वह श्रपने-श्रापको निर्भय पाती थी। इतना ही नहीं, कभी-कभी तो वह नीम्या को काठियावाड़ी पोशाक पहनाकर श्रौर

स्वयं लुंगी-एंजी पहनकर चांदनी रात में चुपके से घूमने निकल जाया करती थी।

खुद नीम्या भी बल्ला के बिना घडीभर नहीं रह सकती थी। भ्राते ही वह उसपर चुम्बनों की बौछार लगा देती भ्रौर लेकर उसे उछालने लग जाती थी। भ्रव वह बल्ला के बिना कैसे रही होगी!

उसे भ्राये तीन-चार दिन हो गये थे। पाचेक दिन पहले भ्राई थी, तब उसने हेमकुंवर से पूछा, "यदि तीनेक दिन तुम्हारे घर मे रहना पड़े तो रहने दोगी या नहीं?"

"रहने क्यों न दूंगी?"

"परंतु लगातार तीन दिन भ्रौर तीन रात तक?"

तीन रात तक रखना तो मुसीबत थी। इन डॉक्टरों का भरोसा ही क्या? हेमकुंवर को सोच मे देख नीम्या ने कहा था, "मैं भ्रकेली नही रहूंगी। मेरे साथ भ्रौर भी कोई होगा।" भ्रौर यह कहते हुए वह मुस्करा दी थी।

"तब कैसे रख सकूंगी? कौन रहेगा तेरे साथ? हां, जो तेरे माता-पिता स्वीकृति दें तो रख लूंगी।"

"नही, उनसे बिल्कुल न कहा जाय। यदि वे ढूंढने भ्रावें तो भी उन्हें पता न दिया जाय।"

सोच-विचार मे पडी हुई हेमकुंवर ने कहा था, "तो मैं डॉक्टर से पूछ लूं।"

"नही, उनसे भी मत पूछना। पूछने की कोई बात है भी नही। मैं तो योंही कह रही थी।"

"लेकिन भ्राखिर बात क्या है?"

"कुछ भी नहीं। यों बेमतलब मजाक कर रही थी।" भ्रौर इतना कहकर नीम्या जो गई तो उसने भ्रभी तक शकल नहीं दिखलाई।

एक सांझ बल्ला जोर-जोर से रोने लगा तो हेमकुंवर डॉक्टर को साथ लेकर सोना चाची के घर पहुंची। नौतम को भी नीम्या का न भ्राना भ्रच्छा नहीं लग रहा था, लेकिन वह चूंकि स्त्रियों के स्वभाव से परिचित था, उसने घर में उस बात को छेड़ना ठीक नही समझा। भ्रौर

जब हेमकुंवर ने सोना चाची के घर चलने की बात कही तो उसने उत्तर में सिर्फ इतना ही कहा, "चलो हो आवें।"

"ग्रावा, नीम्या की मां ने अतिथियों का स्वागत किया और पति को बाहर बगीचे में से बुलाने दौड़ी गई। "देखा हथिनी!" डॉक्टर ने पत्नी से कहा, "एक तुम हो, हाथभर का घूंघट निकाले लसर-पसर ढंग के कपड़े पहने निर्लज्जता से पुरुषों के समीप होकर निकलोगी और एक यह है। लुंगी पहनती है। संकड़ी लुंगी में चलते वक्त टांगें मुश्किल से हिल पाती हैं। बुड्ढी होगई है, फिर भी कितनी फुर्तीली है और कितनी सिमट-सिकुड़कर चलती है!"

हेमकुंवर की हँसी उसके शरीर के समान ही विशद और गंभीर थी। चिढ़ने के बजाय उसने हँसकर कहा, "इतने दिनों के बाद भी अभी आप ठीक से तुलना नहीं कर पाये। एक सभा का आयोजन कीजिये तो मैं उसमें घोषणा कर दूं कि गुजरात में बर्मी पोशाक पहनना कानूनन अनिवार्य कर दिया जाय। बाकी ऐसा लगता है कि मानो आपने कभी काठियावाड़ी या मेराणी औरत देखी ही नहीं। और देखी भी होगी तो मुर्दे चीरनेवाले को सिवा दोष के और क्या दिखाई दिया होगा।"

यह कहकर हेमकुंवर ने चलते-चलते अपने बदन को हिलाकर नागिन की तरह जो बल खाया तो डॉक्टर बेचारे को मंजूर करना पड़ा।

"मानता हूं, हमारी गुजरातिनें भी शृंगार की कला जानती हैं।"

"दूसरों के दोष-ही-दोष देखनेवाली या दूसरों की अच्छाइयां देखकर चौंधिया जानेवाली आंखें दोनों ही ऐंची आंखें हैं।"

"उस ऐंचेपन का तो तुमने बड़ी अच्छी तरह आपरेशन कर दिया है, मेरे सर्जन!"

"यदि आपरेशन हो गया तो अब दोष-गुण दोनों को सीधी निगाह से देखना सीखो, मेरे बीमार डॉक्टर!"

"डॉक्टर तो मैं दूसरों का हूं, तेरा तो सदा का मरीज़ हूं।"

नीम्या का पिता एक नया गड़हा खुदवा रहा था और उसकी गहराई देख रहा था। उसने भी तीनों को ग्रावा कहा और डॉक्टर की ओर एक कृतज्ञतापूर्ण दृष्टि डाली। इसी बीच गड़हे में अचानक एक

मछली को तड़पते देख उसके मुंह से चीख निकल गई। मजदूर ने पीपे में से लेकर जो पानी गड्हे मे डाला था, उसीके साथ एक जीवित मछली गड्हे मे आ गिरी थी।

एक सैकण्ड की भी देर किये विना उसने सिर पर लपेटा हुआ रेशमी धाऊ-वाऊ उतारा और उसमे पूरी सावधानी से उस तड़पती हुई मछली को उठा लिया। फिर उसे ठेठ नदी में डालने को चल दिया। जाते-जाते पत्नी से कह गया कि अतिथियों को भीतर बैठाओ। मैं आया।

डॉक्टर तो दंग ही रह गया।

"यह धाऊ-वाऊ पाच रुपये से कम का न होगा, हर्षिनी" डॉक्टर गौतम ने कहा, "मासाहारी होते हुए भी ये लोग···"

नीम्या की मा ने उनके इस गुजराती वार्तालाप के प्रति किसी तरह का कोई कुतूहल प्रदर्शित नही किया। वह भीतर जाकर पानदान उठा लाई। फिर पानदान को दोनो हाथो से छाती के सामने पकड़े रखकर धीरे-धीरे कदम उठाती हुई वह उनके संमुख पहुंची और इस बात की पूरी सावधानी रखकर कि कही तलुए न दिख जाय वह घुटने झुकाकर बैठ गई और मानो देवता को अर्पण कर रही हो इस तरह पानदान उनके सामने की चौकी पर रख दिया। उसके बाद उसने सिर झुकाकर प्रणाम किया। झुके हुए सिर मे वेणी का केश-विन्यास दीख पडा।

"अब बोल, तेरी काठियावाड़ी या मेराणी औरत इसकी लुगी पहनकर यों घुटने झुकाकर बैठ भी सकेगी!" डॉक्टर ने पुन. बर्मी प्रथा का बखान करते हुए कहा, "और क्या मस्त सुगध आ रही है।"

"यह इनके शरीर की सुगंध है।" हेमकुंवर जानती थी, प्रत्येक बर्मी स्त्री अपने शरीर पर चंदन का लेप करती है।

डॉक्टर ने सोना चाचों से पूछा, "वह लड़की कहां है?"

"कौन, मा-नीम्या!" ढो-स्वे ने शांति से कहा, "हम तो समझे बैठे थे कि वह तुम्हारे साथ भाग गई है!"

डॉक्टर दम्पति यह सुनकर अवाक् रह गये। उनके चेहरों का रंग ही उड़ गया। ढो-स्वे को समझते देर न लगी। वह मुस्कराकर बोली, "अरे, घबरा गये! नहीं जानते कि हम कुंआरी लड़कियो की मजाक

उड़ा सकते हैं ? हां, अब कल से हम नीम्या की मजाक नहीं उड़ा सकेंगे। आज सांझ को उसके तीन दिन पूरे हो जायंगे। अभी तक हम उसके छिपने की जगह का पता नहीं लगा सके हैं।"

"यह क्या मामला है ?"

ढो-स्वे ने उन्हें समझाया, "नीम्या हमारी पसंदगी का विवाह नहीं करना चाहती थी, इसलिए अपने किसी प्रेमी के साथ भाग गई है। तीन दिन तक वह प्रेमी उसे अपने किसी सगे-संबंधी या मित्र के यहां छिपाकर रखेगा। हमने ढूंढ़ा था। यदि पकड़ पाते तो वह शादी नहीं हो सकती थी, लेकिन अब चूंकि पकड़ नहीं पाये, इसलिए हम माता-पिता को अपनी स्वीकृति देनी पड़ेगी। आज सांझ को ही उन्हें आ जाना चाहिए।" माता के स्वर में विश्वास की ध्वनि थी।

"गई है किसके साथ ?"

"यह तो उसके आने पर ही मालूम होगा।"

हेमकुंवर ने मन-ही-मन सोचा—कितनी विचित्र है यह मां ! पुत्री के ऐसे व्यवहार के बारे में भी जो इतनी सहज स्वाभाविकता से बातें कर रही है ! और प्रकट में पूछा, "यदि मैं उसे अपने घर में छिपा रखती तो भी तुम्हें गुस्सा न आता ?"

"क्यों, गुस्सा होने की उसमें क्या बात है ? यह तो हमारे यहां विवाह की एक सम्मानित प्रथा है। हां, जो तुम्हारे घर वे पकड़े जाते तो फिर यह शादी नहीं हो सकती थी।

"लेकिन भागने की और भागकर छिपने की जरूरत ही क्या है ? और तुम्हें भी क्यों ढूंढ़ना पड़ता है ?"

"हमारी पसंदगी की शादी न करना हो तो भाग जाते हैं।"

"लौटकर आयेंगे उस वक्त..."

"उस वक्त तो हम आशीर्वाद ही देंगे।"

"संबंध भी बनाये रखोगे ?"

"जरूर।"

"मान लो कि लड़का तुम्हें पसंद न आये ?"

"तीन दिन के बाद तो हमारी पसंदगी-नापसंदगी का प्रश्न ही

नहीं रह जाता है । फिर तो जैसा भी है खरा सोना है ।"

मछली को नदी में छोड़ आकर नीम्या का पिता लौट आया था। उसे अपने रेशमी घाऊ-वाऊ के खराब हो जाने का तिलमात्र भी अफसोस नहीं था। दूसरा घाऊ-वाऊ सिर पर लपेटकर वह इत्मीनान से बैठ गया। डॉक्टर ने उससे पूछा, "मांसाहारी होने पर भी आप लोगों की यह जीव-दया कुछ मेरी समझ में नहीं आती।"

"हम मांसाहारी हैं अवश्य, लेकिन खुद तो मारते नहीं हैं। और न जाल फेंककर पकड़ते ही हैं। किसी भी जीव की मृत्यु-यंत्रणा हमसे देखी नहीं जाती।"

गृहिणी एक थाल में कुछ फल और मेवा ले आई। पहले ही की तरह छोटे-छोटे कदम रखते हुए और तब घुटनों के बल बैठकर उसने वह थाल उनके सामने रख दिया।

अतिथियों ने अभी खाने की शुरूआत की ही थी कि नीचे अहाते का दरवाजा खोलकर दो व्यक्तियों ने प्रवेश किया। माता ने तनिक भी उद्वेलित हुए बिना कहा, "मा-नीम्या आई है।" माता-पिता दोनों यहां से उठकर बाहर गये। दोनों ने नीम्या के साथवाले युवक को देखा। वह बर्मी युवक था। हिंदुस्तानी या जेरबादी नहीं था। दोनों को यह देखकर संतोष हुआ। नीम्या और उसके साथी ने ऊपर आकर वृद्ध दंपति को घुटनों के बल बैठकर प्रणाम किया। वृद्ध दंपति ने आशीर्वाद दिये। पिता अपने उद्वेग को छिपा न सका, परंतु माता अपने मन को संयत बनाये रही। यही तो है बर्मी नारी और पुरुष के स्वभाव का प्राकृतिक अंतर।

"अंदर तो जाकर देख, कौन आया है ?" माता ने नीम्या से कहा।

नीम्या ने भी वल्ला की आवाज सुनली थी। वह लपककर भीतर आई और वल्ला को छाती से लगा लिया। "मैं तो तेरे लिए तरस ही गई थी शैतान ! पांच दिन होगये तुझे देखे। जो तेरी मां ने ही इन्कार न कर दिया होता तो मैं कहीं और क्यों जाती ? तेरे पास-की-पास बनी रहती।" और फिर हेमकुंवर से बोली, "क्यों तुमने नहीं रहने दिया तो क्या हमें कहीं जगह ही नहीं मिली ? पूछ देखो मां को। तीन दिन से

ढ़-ढूंढ़कर हैरान हो गईं, पर कहीं हमारा सुराग तक न मिला।"

"अरी पगली !" हेमकुंवर ने कहा, "जो तूने मुझे पहले ही समझा दिया होता तो मैं कभी इन्कार करनेवाली थी भला ! ख़ैर, जो हुआ सो तो हुआ, पर यह तो बतला कि तू लाई किसे है ? दीखता तो कोई मालदार ही है ?"

"तुमने कैसे जाना ?"

"सामने ही दीख रहा है। तेरा सारा शरीर जो श्वे[1], नुं वें[2] और सेंई[3] से मढ़ा हुआ है !"

"तो क्या सब उसीका दिया हुआ है ?"

"अच्छा, तो फिर किसका है ? मां का ?"

"ऊं हुं अ्।"

"तो फिर ?"

"बतला दूं ? उसने हेमकुंवर के कान में कहा, "एक व्यापारी का है; पसंद करने के बहाने उठा लाई हूं।"

"अब ?"

"अब क्या ? वापस जाकर लौटा आऊंगी। मेरा काम पूरा होगया। मुझे तो इसे रिझाना था।"

"और जो यह कहीं रूठ जाय तो ?"

"रूठकर मेरा क्या बिगाड़ेगा ? मियां जी अपनी लंगोटी बेचकर मेरा सिंगार करने से रहे !"

"अच्छा, तो यह कोई नुं वे झा-मोइझा[4] वाला नहीं है ?"

"नुं वेझा-मोइझा तो दूर, पास में घिसा रम्या[5] तक नहीं।"

"फिर तूने ऐसे फटेहाल को क्यों पसंद किया ?"

"बस, यही तो नहीं पूछा करते हैं बर्मी लड़कियों से। दि
का सौदा है। मां ने तो ढूंढ़ रखा था सोने-रूपे और हीरे-जव
वाला। लेकिन वह मुझे पसंद नहीं था। मुझे पसंद आया
रानी जिसे पसंद करे वह राजा।"

---

[1]सोना [2]चांदी [3]हीरे [4]रुपए-पैसे [5]पैसा

"और जो अम्मां ने उत्तराधिकार में फूटा घड़ा पकड़ा दिया तो बीवी जी पैसे के बिना क्या करोगी ?"

"पैसा क्या पे मेरे। पैसा भगवान देंगे। वह सबके मालिक हैं। पैसा-पैसा क्या करती हो ? मैंने तो पसंद किया है इसे। इसीके फटे-पुराने कपड़े-सी दूंगी।"

नीम्या आभूषणों के बोझ के मारे झुकी जा रही थी। उसका प्रत्येक वाक्य एक तरल हँसी से गूंज उठता था। उसकी एंजो की चौड़ी बाहें दोनों ओर झूल रही थीं। अपनी पसंद के युवक के साथ—मजदूर ही सही—शादी कर सकने का संतोष उसपर नशे की तरह छाया हुआ था। उसका पति बाहर माता-पिता के पास बैठा था और उनके प्रश्नों के उत्तर के रूप में अपना परिचय दे रहा था। साधारण स्थिति का लगभग मजदूर की हैसियत का आदमी था। घर में मां-बाप दोनों ही थे। थोड़ी-बहुत जमीन भी थी। डो-रबे और उसका पति उसकी गरीबी की पूरी बात जानकर भी चुप ही रहे। दोनों में से किसीने न तो लड़की को बुरा-भला कहा और न लड़के को ही।

लड़के की बात पूरी हो जाने पर गृहस्वामी ने उसकी ओर मुड़कर कहा, "अब यहीं रह जाओ और मेरी जमीन की देख-भाल करो, बेटा ! मैं तो बूढ़ा हुआ।"

"नहीं !" सास ने शांति से कहा, "कैसी पस्त-हिम्मती की बातें करते हो तुम ? इसके मां-बाप अकेले हैं। फिर गरीब और बूढ़े हैं। नीम्या और इसका फर्ज है कि वहीं रहे और वहां का कामकाज देखें-भालें। यहां का काम करने के लिए तो मैं हूं अभी। और फिर ये हैं ही कितनी दूर ?"

जलपान के बाद अतिथि उठ खड़े हुए। मां-बेटी ने उठकर विनय-पूर्वक रास्ता दिया। जाते-जाते डॉक्टर पत्नी ने नीम्या की पीठ पर हाथ फिराया और स्नेहपूर्वक कहा, "कभी किसी तरह की जरूरत पड़े तो हमें भूल मत जाना।"

नीम्या ने सिर झुका लिया।

"भगवान करे हमारी आवश्यकता ही न पड़े।" डॉक्टर ने नीम्या

के प्रति स्वस्थ शरीर की ओर देखकर आशीर्वचन कहे।

"तुम्हारी तो नहीं, परंतु मेरी आवश्यकता पड़ सकती है।" हेमकुंवर ने कहा।

"हां, शायद नौ महीने बाद..."

डाक्टर को बीच में ही रोककर हेमकुंवर ने कहा, "अब इसकी शादी होगई है। जरा-सी भी मजाक की और उधर इसके पति ने घा निकाली। आंखें तो उसकी इतने में ही लाल होगई हैं।"

"सच है। भागो, नहीं तो मरना ही पड़ेगा।" और डॉक्टर लपक-कर मोटर में जा बैठे।

"और जो कहीं उसने सचमुच घा निकाल ली होती तब भी तुम योंही पहले भाग जाते, क्यों?" हेमकुंवर ने ताना मारा।

"अपनी मर्दानगी का खयाल कर अबलाओं को तो कोई पुरुष हाथ लगायेगा नहीं। तुम तो हमेशा सुरक्षित हो।"

"इस बात में कुछ भी तथ्य नहीं है, डॉक्टर। हेमकुंवर ने चलती मोटर में कहा, "ये लोग हैं ही औंधी खोपड़ी के। मर्दानगी-वर्दानगी स धरी रह जाती है। यहां तो उठाया घा और मारा घा। समझे।"

: १२ :

एक पानी बरस गया था। धरती भीग चुकी थी। नीम्या के ससुर ने अपने खेत मे धान बो दिया, खेत के ऊंचे किनारों में बांध बांध दिया और निश्चित होकर सले फूकता हुआ घर आ बैठा। जेठ का महीना आया। खेतो मे पानी भर गया। नीम्या की सास ने काम का तकाजा शुरू कर दिया, लेकिन बर्मी पुरुष काम करने के मामले मे 'अजगर करै न चाकरी पंछी करै न काम, दास मलूका कह गये सबके दाता राम।' बूढ़े को तो होटल का चस्का पडा हुआ था। वह बुढ़िया की बातें इस कान सुनकर उस कान निकाल देता और हंसकर चुपचाप घर में से खिसक जाता था।

खेत के कमर-कमर छाती तक गहरे पानी मे खड़े रहकर धान की पौध को निकालने के लिए कोई बर्मी मजदूर राजी ही नही होता था। ज्यादातर मजदूर तो कारखानों मे खिच गये थे। जो बचे थे वे हद दर्जे के काहिल हो रहे थे। सबसे बडा डर तो जोंकों का था। खेतो मे पानी में उनकी बहुतायत थी। नीम्या की सास मजदूरों की तलाश मे जहां भी जाती, वहां पहले तो वह मजदूर उठकर घर के अंदर जाता और फिर बाहर आकर कह देता, "आज तो मजदूरी करने नही आना है।"

"हां, आज काहे को आने लगा? दिनभर का चावल जो बचा है हांडी मे!" बुढ़िया बेचारी कोसती हुई दूसरे की तलाश मे चल देती, लेकिन सब-के-सब 'आज तो खाओ-पीओ और मौज करो, कल मर जाता है' वाली मनोदशा में थे।

आखिर घूमते-फिरते नीम्या की सास को हिंदुस्तानी मजदूर मिल

। खेती की वर्वादी और वेकारी वढ़ जाने से हिंदुस्तानी किसानों के
-के-झुंड मुट्ठी चावल की तलाश में समंदर पार कर यहां आ निकले
। भारतीय सौदागरों की अपेक्षा उनकी संख्या कई गुनी अधिक थी।
ड़ीसा का उड़िया मज़दूर यह भयंकर मज़दूरी भी सस्ते में करने को
यार हो जाता था।

ये उड़िया मज़दूर पांवों पर चिपकी हुई जौंक को छुड़ाने का एक लाजवाब तरीका जानते थे। उधर जौंक चिपकी, इधर इसने उसपर थूका। थूक के साथ जौंक छूट जाती थी। पानी में वेशुमार जौंकें थीं। झुंड-की-झुंड मज़दूर के पांवों पर आ चिपकतीं, चिपककर खून चूसने लगतीं, खींचने पर टूट भले ही जातीं, पर छूटने का नाम न लेतीं थीं। ऐसी इन जौंकों को उड़िया मज़दूर थूक के साथ छुड़ाता हुआ काम करता था। पहले उसने धान के रोपे पानी से पोची हो रही जमीन में से उखाड़े, उखाड़कर उनकी थप्पियां पानी पर तैरती हुई छोड़ दीं। उसके वाद खेत का वांध खोलकर पानी खाली किया और धान की पौध को एक-एक करके फिर से खेत की जमीन में रोप दिया।

काठियावाड़ में एक मसल मशहूर है कि 'खेत में फसल हरी देखकर पन्नालाल ने पांच वार शादी की।' इसका मतलब यह है कि किसान हरे खेत लहलहाते देखकर अच्छी फसल की उम्मीद में इतना खर्च कर डालता है कि उतनी रकम में पांच शादियां की जा सकें। यह तो हुई हिंदुस्तानी किसान की वात। अव देखें कि नीम्या के पति वर्मी किसान ने अप
पिता के खेत में धान की हरी फसल लहलहाते देखकर क्या किया?

उसका नाम था मांऊ-पू। वह एक चावल-मिल में मज़दूरी कर
था। महीने में वीसेक रुपये मिल जाते थे। शादी के पहले महीने
उसने उन वीस रुपए में से एक वढ़िया रेशमी लुंगी खरीदी।
महीने एक अच्छा-सा हाफ कोट लिया। तीसरे महीने एक घड़ी ख
गई। चौथे महीने फुंगी-धर्म के एक वहुत वड़े गुरु के मरणोत्सव का
सप्ताह आ गया। वर्मा में जन्म और विवाह के उत्सव नहीं मनाये
लेकिन वहां का मरणोत्सव इन दोनों उत्सवों की कसर पूरी क
है। वर्मी धर्मगुरु का यह मरणोत्सव शहर और अड़ोस-पड़ोस के

की जनता के लिए एक अच्छा-खासा उत्सव बन गया।

फुंगी का शव मसालों के लेप और सुगंधित द्रव्योंसहित तीन महीने तक चंदन की पेटी में रखा गया था और अब उसकी अंतिम संस्कार-विधि होनेवाली थी। इस अवसर पर घर-घर में, प्रत्येक पया और प्रत्येक चांऊ में नाटक, राग-रंग, संगीत की महफिलों और द्यूतक्रीड़ा की धूम मच गई। पोमेड, पफ और पाउडर की दुकानों पर हजारों बर्मी नारियों की भीड़ लग गई। लुंगी और थाऊ-वाऊ जैसे रेशमी कपड़े बेचने वालों के यहां चांदी बरसने लगी। लगी-लगाई नौकरी को धता बताकर उत्सव में सम्मिलित होनेवालों में माऊ-पू भी था। कागज के फूल बना-बनाकर बेचनेवाली नीम्या भी दूसरी कई औरतों के साथ उत्सव में कहीं खो गई, और नीम्या के ससुर ने एक मदरासी चेट्टियार की पेढ़ी पर धान का पका-पकाया खेत गिरवी रखकर रुपये लिये। मदरास से आकर कर्ज-अमानत का धंधा करनेवाले ये चेट्टियार बर्मा की हजारों मील जमीन के मालिक बन बैठे थे। सर्राफों की दुकानों पर तो इन दिनों सोना ही बरस रहा था।

डॉक्टर गौतम और हेमकुंवर अपने मकान की छत पर खड़े बर्मी लोगों के मरणोत्सव का यह जुलूस देख रहे थे। जुलूस में मुहर्रम के ताजियों के समान ऊंचे-ऊंचे कागज के बने हुए कलात्मक पया[1] थे। इन पगोडा, ध्वजा-पताका और संगीत-वाद्य के बीच देव-मंदिर के कलश जैसा एक ऊंचा कमल-पुष्प आता हुआ दिखलाई दिया। वह कमल-पुष्प मुंदा हुआ था। एक ठेला-गाड़ी में रखकर लोग उसे खींचते हुए ला रहे थे, और मानो वसंत-कालीन मलय समीरण का स्पर्श पाकर उस कमल की विशाल पखुड़ियां धीरे-धीरे, बहुत ही धीरे-धीरे, खुल रही थीं।

यह खिली और खिलीं, लो कमल की पखुड़ियां पूरी तरह से खिल गईं, और उस खिले हुए कमल में खड़ी थी इंद्रलोक की अप्सरा जैसी एक नर्तकी। उसे देखते ही लोगों ने हर्ष-ध्वनि की।

पहले उस नर्तकी का सुंदर वेणी-मंडित मस्तक दिखलाई दिया,

---

[1] पगोडा

फिर हेम-हीरक-हार से सुशोभित ग्रीवा और तव महीन वायल की एंजी से ढंकी हुई, चौड़े कपड़े में वंधी पीन-पयोधर-विहीन चौड़ी और सपाट छाती। कमर से नीचे तक का उसका शरीर कमल के अंदर ही छिपा हुआ था। कमल-पुष्प के संपूर्णतया खिल जाने पर कांसे की कटोरियों को कुंडलाकार रखकर वनाई हुई वर्मी जल-तरंग धीमे स्वर में वज उठीं, वादकों की अंगुलियां तंतु-वाद्यों पर फिरने लगीं[1] और कमल पुष्प के वीचोंवीच खड़ी हुई उस कमल-सुंदरी का नृत्य आरंभ हुआ।

उसके इस नृत्य में घिरता-घुमड़ता चालीस हाथ का घेरदार लहंगा या वदन से लिपट-लिपट जाती चुनरी नहीं थी। उसके पांवों में आस-मानी रंग की एक तंग लुंगी लिपटी हुई थी। उस तंग लुंगी में से जिस नृत्य की सृष्टि हो रही थी वह एक स्वयंभूत कटि-नृत्य था। वह कमल-सुंदरी ताल-स्वर पर कमर के सहारे लचकती, वल खाती मानो एक नीरव छंद की सृष्टि ही कर रही थी। वित्ताभर की उस पतली कमर में महाकाव्यों का सृजन करने की अद्भुत क्षमता मानव ने न जाने कव औ
कैसे छिपाकर रखी थी।

कमल के पास आते ही हेमकुंवर ने हर्ष-ध्वनि की—"अरे, यह अपनी नीम्या है। वाहरी नीम्या!"

कमल में नाचती हुई नीम्या और हेमकुंवर की आंखें चार
और जव गाड़ी आगे वढ़ गई तो हेम ने अपने पति से कहा, "मान
न मानो, लेकिन नाचनेवाली की आंखों में नृत्य के अनुरूप उल्लास
था।"

"तुमने देखा नहीं?" डॉक्टर ने कहा, "नीम्या गर्भवती है।

"तव तो थककर चूर ही हो जायगी!"

"हो जाय उसकी वला से। ये वर्मी लोग कल की फिक्र नहीं
आज जितना लूटा जा सके मजा लूटो, कल की कल देखी जाय

"विल्कुल नन्हें वच्चों जैसे हैं ये लोग।"

"तूने विल्कुल सही कहा। ये वर्मी लोग अभी तक

---

१ वर्मा में मुंह से फूंककर वजाने के वाद्य यंत्र नहीं होते

बाल्यावस्था ही बिता रहे हैं। और यह कुछ बुरा भी नहीं है।"

"लेकिन जिस दिन यह बचपन बीत जायगा, उस दिन क्या होगा, डॉक्टर ?"

"शायद हम परदेशी उनके इस बचपन का शीघ्र ही अंत कर देंगे। उनकी यह बाल-सुलभ निर्दोषता अब ज्यादा दिन नहीं टिकेगी। हम शीघ्र ही उनके सुख-स्वप्नों का अंत कर देंगे!"

"सो कैसे ?"

"रत्नुभाई रोज ही तो कहते हैं कि अब इन बर्मियों की समझ में आ चला है कि वे पीसे जा रहे हैं और परदेशियों के हाथों उनका और उनकी धरती का शोषण किया जा रहा है।"

उसी वक्त नौकर ने आकर अखबार दिया और डॉक्टर ने बड़े-बड़े शीर्षकों में पढ़ा—

"बर्मा बर्मावासियों का है और उन्हींका रहेगा! बर्मी मजदूरों के साथ भारतीय मजदूरों की प्रतिद्वंद्विता।"

"मजदूरी का अनुपात निश्चित करने के लिए बर्मावासियों की पुकार।" आदि-आदि।

: १३ :

फुंगी के शव का अग्नि-संस्कार हो चुका था। उत्सव भी समाप्त होगया था। गर्भवती नीम्या बड़ा-सा टोकरा सिर पर उठाये मछलियां बेचने बाजार में आ बैठी। उधर उसके बेकार पति माऊं-पू ने पुराने कपड़े पहने और सिर्फ दो महीने तक इस्तेमाल की हुई रेशमी लुंगी, कोट और घड़ी लेकर अपांऊ-शॉप[1] का रास्ता पकड़ा।

बर्मा में ये अपॉऊ शॉप चीनियों का एक अच्छा-खासा रोज़गार था। क़दम-क़दम पर ये दुकानें थीं। मांऊ-पू ने एक दुकान पर पहुंचकर तीनों चीज़ें मुफ्त के दामों गिरवी रखीं। अब बची रह गई एक अंगूठी। सोने की वह अंगूठी घूम-फिरकर फिर से अपने पुराने स्वामी सेठ शांतिदास की दुकान पर लौट आई और उनकी तराजू में जा गिरी।

"अरे, तोल से नहीं। इतना भी नहीं समझता!" दुकान के बड़े मुनीम ने अपने उस सहकारी को, जो अंगूठी तोल रहा था, डांटा।

"फिर?"

"तोला नहीं, टीकल ले और वे उधर वाली गुञ्जा ले।"

"लेकिन बेचते समय तो हम लोगों ने तोले से तौलकर दिया था।"

"अपनी अकल बघारना छोड़ दे! दुकान में रोज का जो नियम है उसीके अनुसार काम कर।"

"लेकिन तोले से तौलकर दी हुई चीज को अब टीकल से तौलकर क्या उसका नुकसान करूं?" सहकारी ने चिढ़कर कहा।

टीकल का वजन लगभग डेढ़ तोले के बराबर होता है। मांऊ-पू

---

१. पॉन शॉप—सामान गिरवी रखने की दुकानें।

अंगूठी खरीदकर ले गया तब वजन तोले से किया गया था। अब उसने वापस लेते वक्त उसीका वजन टीकल में करना था।

"क्यों चिल्ला-चिल्लाकर उसे सुना रहा है ? कहीं बीच में कमीशन तो नहीं ठहरा लिया है ?" मुनीम ने ताना मारा।

मांऊ-पू बिना कुछ समझे चुप खड़ा रहा था। तौल के संबंध में उसे तो कोई जानकारी थी नहीं। वह तो एक ओर खड़ा पैसे मिलने की राह देख रहा था।

सहकारी ने तोले के हिसाब से ही वजन किया और मुनीम को चिट्ठी बनाने के लिए कहा। मुनीम ने चिट्ठी में एक तो वजन गलत लिखा और दूसरे, बेचते समय अंगूठी की जो बनवाई ली थी, वह इस बार नहीं लिखी। यों तौल और मोल दोनों में गरीब को मारा। लेकिन मांऊ-पू तो जो कुछ थोड़े-बहुत पैसे हाथ में आये, उन्हींको लेकर खुशी-खुशी चल दिया। उसे नया धांऊ-वांऊ खरीदने की जल्दी थी। हाथ में जो कुछ नकद पैसे आये, उन्हें उसने नई आमदनी के रूप में ही समझ लिया।

यों शांतिदास सेठ की दुकान पर दो तरह के तौल रहते थे। बेचते समय हल्की किस्म का और खरीदते समय भारी किस्म का। गुंझा भी दो तरह की थी। एक वजनी और दूसरी हलकी। बालकों जैसे सरल बर्मी लोग तो गुजरातियों का अपने देश में आना 'फया लारे'—प्रभु के पधारने जैसा समझते थे; वे छल-कपट क्या जानें ? इस मानी में तो वे कम-से-कम सुखी थे।

सहकारी की बड़बड़ाहट शुरू होगई। इस बड़बड़ाहट ने सारी दुकान के जमे-जमाये वातावरण में खलबली मचा दी। पुराने और अनुभवी मुनीम को इस नये छोकरे की यह सफाई अच्छी न लगी। उसने जाकर शांतिदास सेठ से शिकायत की। सेठ ने युवक सहकारी को बुलाकर कहा, "यह बात अच्छी नहीं। तुम्हें इस तरह दुकान के दूसरे कर्मचारियों को बरगलाना नहीं चाहिए।"

"लेकिन यह दगाबाजी !..."

"दगाबाजी-फगाबाजी कुछ नहीं। यह तो इस देश का रिवाज

है, और घर छोड़कर दो हजार मील दूर जो इस काले पानी में आकर पड़े हैं सो कमाने के लिए ही, झख मारने के लिए नहीं।"

"तो इस तरह की नौकरी तो मुझसे हो नहीं सकती, सेठजी।"

"यहां कौन तुम्हें बांधकर रखता है मिस्टर! नहीं हो सकती तो कहीं और तलाश कीजिये। नया मुल्ला दिन में दस बार नमाज़ पढ़ता है। तुम भी नये-नये हो, तबतक जरा नाचना सूझता है। कुछ दिन बीत जाने पर खुद भी यही करने लगोगे।"

युवक चला गया और शांतिदास सेठ हिसाब करने लगे। पंद्रह वर्ष पहले वह देश से सिर्फ़ तीन हजार रुपये लेकर यहां आये थे, और आज चालीस-पचास लाख के आसामी थे। बाजार में उनकी प्रामाणिकता की धाक थी और सोना-चांदी के खरेपन का सिक्का जमा हुआ था। उन्हें मतलब अपनी रोजी से था, व्यर्थ की ईमानदारी से नहीं। दुकान से पचास-पिचहत्तर देशवासियों की रोजी चलती थी और इसके सिवा वे कांग्रेस के काम के लिए हजारों का दान भी देते थे। आदमी इससे अधिक और क्या कर सकता है? लेकिन वह रतु सबको बरगला रहा है! इन दिनों पीनना में अड्डा जमाये बैठा है!

मांऊ-पू लुंगी, पुराना कोट और नया धांऊ-बांऊ पहनकर जब घर की ओर चला तो रास्ते में उसे खयाल आया कि अभी तो घरवाली बाजार में ही बैठी मछली बेच रही होगी। क्यों न उसे अपनी नई सज-धज दिखलाता चले? उसने बाजार का रास्ता पकड़ा और उसका ध्यान अपनी ओर आकर्षित करने के लिए दूर से ही हर्ष-ध्वनि की। नीम्या मछली बेचकर निश्चित होगई थी और अब नल पर हाथ-मुंह धो, संडोऊ में से कंघी निकाल अपने लंबे बालों को ओंछ रही थी। प्रत्युत्तर में उसने भी हर्ष-ध्वनि की।

"आज तो खाओ, पीयो और मौज करो, कल हम मर जायंगे।" यह मौन विचार उस समय उन दोनों के हृदय की धड़कनों में गूंज रहा था।

"तो चलो, मैं भी अपने हाथ के लेकांऊं[1] और कान के नधां[2]

---

[1] कंकण [2] बुंदे

बेच आऊं।" नीम्या ने दोनों आभूषणों को हाथ से हिलाते हुए कहा।

"क्यों ?"

"चावल जो खरीदना है।"

"चावल तो अपने खेत में बहुत हुआ है !"

"अरे पगले ! वह तो सारा खेत ही अय्या के यहां गिरवी रखा जा चुका है।"

"अच्छा तो चल।"

नकली नगवाले नथां और लेकांळं लेकर जब दोनों फिर से शालिदास सेठ की दुकान पर आ खड़े हुए तो मुनीम का चेहरा प्रसन्नता से खिल उठा। दो महीने पहले उसीकी दुकान से खरीदे हुए ये आभूषण पालतू कबूतरों की तरह लौट आये और तराजू में बैठ गये थे। इस बार मुनीम ने पहलेवाले सहकारी के बदले दूसरे को तौल करने का आदेश दिया। वजन की चिट्ठी बना, हिसाब लगाकर जब वह पैसे देने लगा तो नीम्या निराश हो गई। "खरीदकर ले गई थी तब तो वजन बहुत ज्यादा उतरा था ?" उसने कहा। वह वजन भूली नहीं थी।

"वाह !" मुनीम ने कहा, "और घिसाई हुई है, उसे तो तुम ही भूल गई हो। क्यों ?"

"घिसाई कैसी ?"

"पूछ देख किसीसे भी कि सोना पहनने पर घिसता है या नहीं ?"

"लेकिन घिस-घिसकर भी क्या इतना घिस जायगा ? मैंने भी खूब सोना बेच रखा है ?"

"तुम्हारे कान भी कितने मजबूत हैं ? घिसना ही चाहिए।"

"सोना घिस जायगा, लेकिन कान भी कहीं घिसता है ?"

"घिसता है।"

"नहीं घिसता। चल रहने दे, कन्नू मत बेच !" नीम्या कहने लगी।

"हिस बाई !" मुनीम ने जरा मुंह बिचकाकर कहा, "हमें यह सिर खपाना अच्छा नहीं लगता। जैसा होता आया है, वैसा ही होगा।"

"नहीं होगा।" नीम्या ने क्रुद्ध होकर कहा।

"रहने भी दे, जो कुछ मिलता है वही ले ले और चल।" मांऊ-पू खड़ाखड़ा परेशान हो गया था।

"तू क्या समझे ? तौल गलत है, तुझमें अकल भी है या नहीं ? पंद्रह रुपया कम कैसे ले लें ? और फिर खायंगे क्या ? खेत नहीं रहा, और कुछ भी नहीं रहा। फिर तू अभी बेकार ही बैठा है।"

यह बात मांऊ-पू को चुभ गई। उसने उत्तेजित होकर कहा, "अच्छा, तो चलो तठे के पास।" तठे कहते हैं सेठ को।

"तठे-फठे की झंझट छोड़। मैं ही तो तठे हूं। यदि तुझे जरूरत हो तो ले ये पैसे।" मुनीम ने जरा तिरस्कारपूर्ण स्वर में कहा।

बर्मी भाषा में 'तू' के लिए 'मी' शब्द है। बार-बार इस 'मी' शब्द का प्रयोग होने लगा। मुनीम ने नीम्या के लिए भी 'मी' शब्द का प्रयोग किया। इस 'मी' शब्द की तुच्छता बर्मी को आग-बबूला कर देने के लिए काफी है। मांऊ-पू ने झट से कहा, "क्यों, आंखों में चर्बी छा गई है क्या ?"

"अबे, जा भी चभोजी ! तेरे जैसे तखो बहुत देख रखे हैं।"

'चभोजी' कहते हैं बंदर को और 'तखो' का अर्थ है चोर। जब नौबत यहांतक पहुंच गई और तखो तथा चभोजी जैसे शब्दों का प्रयोग होने लगा तो अंत में मांऊ-पू ने वे शब्द कहे, जो प्रत्येक बर्मी बिल्कुल ही परेशान हो जाने पर कहता है, "मग्वां नाई बू।" (यह मेरी बर्दाश्त के बाहर है।)

"जा-जा, तुझसे हो सके वह कर लेना।"

बस, मांऊ-पू ने जो कुछ मिला, गिनकर मुट्ठी में दाबा और नीम्या को साथ लेकर चला गया। मुनीम ने उस नये सहकारी की ओर जरा शान से देखा और कहा, "आखिर ले गये न झख मारकर। जनम-जनम के तो कंगले हैं ये लोग। इनके साथ भलमनसी करने से कोई लाभ नहीं। इनसे पेश पाना तो अय्या लोगों का ही काम है।"

'अय्या' शब्द मदरासी चेट्टियारों के लिए है।

: १४ :

शहर में गुजरातियों का एक नया-नया, लगभग निजी-सा, फाग-फलाक क्लब था। सेठ लोग रात में वहां बैठकर ताश खेलते, कभी जुआ भी होता, चाय-सिगरेट के दौर चलते और गप्पें लड़ाई जाती थीं।

"इन ससुर के नाती बर्मी मजूरों के मिजाज का तो कुछ पूछो ही मत!" शिकायत करनेवालों में शांतिदास सेठ अग्रणी थे, क्योंकि हाल ही उनके व्यवसाय में किराने की एक दुकान की वृद्धि हुई थी। "परसों की ही बात है। मेरी दुकान में बिस्कुट की पेटियां आईं। जाने कहां एक पेटी टूट गई। बस, लगे सब-के-सब गोदाम में ही टीन खोल-खोलकर बिस्कुट उड़ाने। आज लुंगियों की पेटी खोलकर उसमें से हरएक ने मनचाही लुंगी निकालकर पहन ली। सरकार खुद इन्हें बढ़ावा दे रही है।

मांडले से अपनी शाखा का निरीक्षण करने के लिए आये हुए धामजी सेठ ने थूक से अंगुली गीली कर ब्रिज के पत्ते उलटते हुए 'बीड' दिया और बातों का दौर आगे बढ़ाते हुए बोले, "चैन में तो कटती है इन डॉक्टरबाबू की। बिस्कुट खा जायें, लुंगी पहन लें, पर कुनैन को कौन बर्मी हाथ लगायेगा।"

"डॉक्टर साहब को तो बड़े प्रिय हैं ये बर्मी लोग।" तीसरे ने कहा।

"बर्मी लोग ही क्यों, औरतें भी।" यह कहकर शांतिदास सेठ सफाई से पत्ते उलटने लगे।

"यदि डॉक्टर साहब का बस चले तो वे इन सब [illegible] को

यहां के वाणिज्य-व्यवसाय से सदा के लिए मुक्त कर वापस हिंदुस्तान भेज दें।"

"तो क्या आपका यह खयाल है कि गुजराती यहां अमर पट्टा लिखा कर आये हैं? आपसे पार पाना तो, सेठ, इन बर्मी लोगों का ही काम है।" समीप ही बैठे डॉक्टर नौतम ने अखबार पढ़ते-पढ़ते कहा।

"जब से हमारे पढ़े-लिखे देशवासी यहां आने लगे तब से हमें तो साढ़े साती ही लग गई।" शामजी सेठ ने अपने कम पढ़े-लिखे होने का एक तरह से स्तुति-पाठ करते हुए कहा।

इस बार डॉक्टर नौतम ने अखबार में से सिर उठाकर पूछा, "हम लोग क्या किसी परमार्थ की दृष्टि से यहां आये हैं, क्यों शामजी सेठ?"

"परमार्थ न सही, परंतु हमने किसीके बाप का कुछ छीन तो नहीं न लिया है।"

"आप भी कैसी बात करते हैं! दिन-दहाड़े लूट मचा रखी है हम लोगों ने, दिन-दहाड़े लूट!" डॉक्टर नौतम ने साफ शब्दों में कहा, "बतलाइये भला, हिंदुस्तान से हम क्या लेकर यहां आये? क्या जमीन गले बांधकर लाये या जिस सोने का आप लोग धंधा करते हैं, उसीको इन बर्मी लोगों के कल्याणार्थ हिंदुस्तान की खानों में से खुदवाकर लाये? यहां हम विदेशी सरकार के तलुए सहलाते हैं और बर्मी लोगों को ठगते हैं। इसके अलावा हम लोगों ने दूसरी कौन-सी छाप यहांवालों पर डाली है? है ऐसा एक भी हिंदुस्तानी, जो इस देश में मिशनरी बनकर रहा हो? हमारे देश का कौन-सा संत, कौन-सा साहित्यिक, संगीतज्ञ या चित्रकार यहां रहने आया? इन लोगों को अपनी संस्कृति का परिचय कराने या इन लोगों की संस्कृति से स्वयं परिचित होने के लिए हमने आज तक एक भी प्रयत्न किया है?"

"संस्कृति! इन बेचारों की संस्कृति!" शांतिदास हँसे, "काबुल में गधे! तुमने तो डॉक्टर हद कर दी! यह तो तुम भाषा के साथ व्यभिचार कर रहे हो।"

'भाषा का व्यभिचार' शांतिदास सेठ का खास प्रयोग था।

गुजरातियों के किसी भी सभा-समारोह में वह मुख्य वक्ता बन जाते थे और खूब दबंग-ठुककर भाषण देते थे। इन भाषणों में तीन बातें उन की पेटेंट थीं। एक तो गुजरात के कवि श्री खबरदार की ये दो पंक्तियां,[1] जिनमें उन्होंने कहा है कि गुजरात और गुजराती को एक-दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता। जहां कहीं गुजराती रहता है, चाहे वह अकेला ही क्यों न हो, गुजरात उसके आस-पास है।

उनकी दूसरी बात थी 'पकौड़ाओं का देश यह बर्मा।' और उनका तीसरा पेटेंट वाक्य था—'[illegible] का [illegible]!'

इनमें से 'पकौड़ाओं का देश यह बर्मा' का प्रयोग उन्होंने पंडित जवाहरलाल नेहरू के बर्मा-आगमन के बाद से छोड़ दिया था। स्वागत-भाषण में शांतिदास सेठ द्वारा इन शब्दों का प्रयोग किये जाने पर पंडितजी ने फटकार सुनाई थी कि "क्या बर्मा में सब पकौड़ा ही है? और कुछ भी नहीं है? क्या यहां आदमी नहीं बसते? सब पकौड़ा-ही-पकौड़ा है? फिर क्यों अंग्रेज़ों के सिखाये हुए इस बेहूदे नारे को रट लगाये फिरते हो?"

"क्यों सेठजी?" डॉक्टर नौतम ने मुस्कराकर पूछा, "क्या शांति है? संस्कृति नहीं कही जा सकती।"

"शौच के बाद पानी से [illegible]।"

उनकी बात पूरी होने से पूर्व ही दो-तीन [illegible] के कमरे में प्रवेश किया। शांतिदास, [illegible] और उनके [illegible] में खड़े हो गये। सिर्फ डॉक्टर नौतम [illegible] खड़े रहे।

"देखो सेठ लोगो!" [illegible] शुरू किया। हम लोग [illegible] एक मिशन चलाते हैं। यह देखो [illegible] और ये हैं दूसरे अंग्रेज अफसरों के [illegible]। [illegible] अंध-विश्वास और [illegible] के आतंक में फंसी हुई जनता [illegible]

---

1. 'ज्यां-ज्यां वसे एक गुजराती
त्यां-त्यां सदा काल गुजरात'।

खुदावंद मसीह की शरण में आने पर ही हो सकता है। तुम लोगों ने यहांवालों को लूट-लूटकर खूब तिजोरियां भरी हैं। अब उनके उद्धार के लिए हमें दान देना तुम्हारा कर्त्तव्य है। हर एक्सलेंसी तुम्हारे दान को एप्रिशियेट (प्रशंसा) करेंगी।"

उस धारा-प्रवाह अंग्रेजी में कुछ ऐसा जादू था और बोलनेवालियों की अदा में कुछ ऐसा वशीकरण था कि सेठ लोग पानी-पानी होगये। उन मेमों ने इंजील के साथ "भग्-व्द्-गी-टा' शब्द का भी कोई बीसेक बार उल्लेख किया। उनके मुंह से 'भग्-व्द्-गी-टा' सुनकर तो सेठ लोग सौ-सौ बार निछावर होगये। उन्होंने एक-दूसरे की ओर देखा और उधर उन अंग्रेज महिलाओं ने दाताओं की सूची मेज पर फैलाते हुए कहा, "हमारे बर्मा पुनरुद्धार मिशन के वार्षिकोत्सव में हर एक्सलेंसी प्रत्येक दाता से रूबरू मिलकर उनका परिचय हासिल करनेवाली हैं।"

"लिखो शामजी सेठ!" शांतिदास सेठ ने कहा।

"नहीं, पहले तुम लिखो सेठ।"

"तीन-तीन कारखानों के मालिक होकर भी आगा-पीछा!"

"अच्छा तो लाओ।" और शामजी सेठ ने सूची में अपनी ओर से रकम का आंकड़ा लिख दिया।

"व्हाट!" उस गोरी मेम ने एक विस्मयपूर्ण मुस्कराहट के साथ शामजी सेठ का हाथ पकड़ लिया। शामजी सेठ ने तो उतने से स्पर्श में ही जिस रोमांच और सुख का अनुभव किया, उसके आगे सात स्वर्गों का सुख भी नगण्य था। मेम ने कलम उनके हाथ से ले ली और कहा, "हर एक्सलेंसी मुझे बहुत-बहुत डांटेंगी। कहेंगी कि यू स्टुपिड! शामजी सेठ के सिर्फ पचास ही रुपये! ऐसा भी कहीं हुआ है! इधर लाइए काग़ज़। आपकी हिम्मत न होगी। मैं विशेष परिवर्तन नहीं करूंगी सिर्फ एक सिफ़र।" इतना कहकर उसने पचास के आगे एक शून्य और बढ़ा दिया और कहा, "नाऊ (अब) हर एक्सलेंसी आपकी बहुत-बहुत तारीफ करेंगी।"

शामजी सेठ की आंखों के आगे हर एक्सलेंसी के भावी 'एप्रिसिएशन (सराहना) की तस्वीर खड़ी होगई।

"और अब आपकी बारी है !" शांतिदास सेठ की ओर मुड़ते हुए उस मेम ने कहा। "तुम बर्मीज पिपुल (लोग) को बोट रॉब (लूट) किया। उसका प्रायश्चित्त करो। पूरा-पूरा प्रायश्चित्त करो। खुदावंद मसीह की महर हो जायगी तो और भी बहुत-सा कमा लोगे। सत्पथ से भटके हुए इन बर्मी लोगों का उद्धार करनेवाले मसीह के नाम पर दिल खोलकर दान दो। इस काम में खुद हर एक्सलेंसी जो परिश्रम कर रही हैं उसकी ओर देखो। बोलो क्या लिखूं ?"

"जो आप उचित समझें।" शांतिदास सेठ ने गवर्नर पत्नी के साथ हाथ मिलाने का सुख-स्वप्न देखते हुए कहा।

शांतिदास के नाम के आगे एक हजार की रकम लिखकर उस अंग्रेज रमणी ने कागज उन्हें दिखलाया।

"बस-बस, ठीक है। अब मैं क्या देखू, 'एज यू प्लीज' (जैसा आप उचित समझें) !' " शांतिदास सेठ ने संक्षिप्त-सा उत्तर दिया, और मन-ही-मन सोचा, लेने आवेगी तब-की-तब देखी जायगी।

"और अब आप, महाशयजी।" मेम ने डॉक्टर नौतम को पकड़ा, "अखबार में मुंह छिपाकर बच नहीं सकते। बोलिये क्या देते हैं ?"

"कानी कौड़ी भी नहीं।" डॉक्टर ने धीरे-से उत्तर दिया और फिर अखबार में आंखें गड़ाली।"

"क्यों ? बर्मी लोगों के उद्धार के कार्य में तुम्हारा कोई उत्तर-दायित्व नहीं है ?"

"लेकिन मैं तुम लोगों को उनका उद्धार-कर्ता मानता ही कब हूं ?"

"उद्धारक नहीं तो क्या हम उन्हें बिगाड़नेवाले हैं ?"

"शायद ऐसा ही हो।"

"यह तो हद दर्जे की हिमाकत है !"

"कुछ भी समझ लो। लेकिन एक जाति को किसी दूसरी जाति का इस तरह उद्धार करने का कोई भी अधिकार नहीं।"

"किस तरह का उद्धार ?"

"उसके धर्म, संस्कार और रीति-रिवाजों की बुराई करना और सिर्फ ईसाई धर्म को सर्वोपरि समझ उसीका गुण-गान करते फिरना।"

"लेकिन यहां के फुंगी !..."

"वे चरित्रहीन हो सकते हैं। तुम भी तो कुछ दूध के धोये नहीं हो ! जब वे अपने फुंगियों से तंग आजायेंगे तो स्वयं ही उनका अंत कर देंगे।"

"हम यहां सदुपदेश सुनने नहीं आई हैं।"

"मैं ही कहां तुम्हें ढूंढ़ने गया था ! तुम्हें तो उपदेश नहीं, पैसे चाहिए ? दूसरों का उपदेश तुम्हें अच्छा नहीं लगता। फिर यह मानने की धृष्टता क्यों, कि तुम्हारा उपदेश दूसरों को अच्छा लगना ही चाहिए।"

"हर एक्सलेंसी बहुत-बहुत नाखुश होंगी, यह समझ रखना।"

"रानी रूठेगी, अपना सुहाग लेगी। उनकी प्रसन्नता ही ज्यादा खतरे की बात है।"

"तुम्हारा नाम ?"

"नीचे दरबान है, उसीसे पूछ लेना।"

जाने क्या बड़बड़ाती हुई ईसामसीह की वे दोनों भेड़ें जब चली गई तो डॉक्टर नौतम ने अपने साथियों से कहा, "इनके बारे में तो पता है न ? इन्हें भी शौच के बाद पानी से परहेज है या नहीं ?"

साथी झेंप गये। डॉक्टर नौतम ने आगे कहा, "बर्मी लोग इसके बारे में, अंधविश्वास-पूर्ण ही सही, परंतु एक सफाई देंगे कि क्या करें भाई, पुरातनकाल में देवी-देवता और अप्सराएं हमें उठा ले जाते थे। अशुचि रहकर हमारे पूर्वज उनसे अपनी रक्षा कर लेते थे। आत्मरक्षा के लिए प्रचलित यह प्रथा पुरातनकाल से चली आ रही है। लेकिन इन लोगों के पास तो अपनी अशुचिता के लिए ऐसी अंधविश्वासपूर्ण सफाई भी नहीं है। फिर कैसे भी क्यों न हों, पर ये बर्मी खुद होकर हमारे गले पड़ने नहीं आये। हम लोग ही समंदर पार करके इनके देश में आ घुसे हैं और हीरा-माणिक बेचते-बेचते ठेठ इनके अंतःपुरों में पहुंच गये हैं। अतिथि बनकर हम मजे से इनके भेंट किये हुए फल और मेवों को हजम कर जाते हैं और एक की चीज के बीसगुने दाम वसूल करते हैं। वहां कभी बाधक हुई है इन लोगों की अशुचिता हमारे लिए ? कभी नहीं। इन लोगों को दाएं-बाएं से लूटकर इनके आत्मोद्धार या

समाज-सुधार के कामों में कभी हमने कानी कौड़ी की भी मदद दी है ? ये गोरी मेमें गवर्नर और उसकी पत्नी की धौंस जमाकर तुम लोगों को उल्लू बना गईं और अभी आठ दिन पहले जो वर्मा समाज-सुधारक चंदे के लिए आये थे उन्हें हम लोगों ने ठेंगा बतला दिया था।"

"बाल की खाल निकालने से क्या फायदा !" रामजी सेठ ने सफाई देने की कोशिश करते हुए कहा, "हम ठहरे परदेसी पंछी, आज रहे कल जाना ! जो कुछ बन जाता है करते ही हैं। यहां तो सभी आते हैं। पंडित जवाहरलाल से लेकर वाइसराय तक। हम किसको 'हां' कहें और किसको 'ना' कहें। अपनेको तो अपनी रोजी से मतलब ! सभी का मन रखना पड़ता है।"

"यहां इतना कमाते हैं तभी तो देश-सेवा के कामों में कुछ दान कर सकते हैं। मांगनेवालों का तो सांझ-सवेरे तांता ही लगा रहता है। आज अमुक विद्या-मंदिर के आचार्य आये हुए हैं; तो कल फलां हरिजन-आश्रम के संचालक; और परसों किसी गुरुकुल की लड़कियां ही आ धमकती हैं। अकाल और भूकम्पवाले अलग ही दौड़े आ रहे हैं ! कोई गांधीजी का पत्र लाता है तो कोई वल्लभभाई की सिफारिश ! एक दिन की भी तो फुर्सत नहीं मिलती। यहां तो सभीका गढ़ा पूरना पड़ता है !" शांतिदास सेठ ने पूर्ति की।

"आपका कहना सच है, शांतिभाई !" डाक्टर गौतम ने स्वीकारात्मक ढंग से कहा, "जिस तरह हम लोग यहां अपने काम-धंधे के सिवा किसी भी राजनैतिक या सामाजिक प्रश्न की चिंता नहीं करते, उसी तरह भारतवर्ष से यहां चंदा उगाहनेवाले हमारी परेशानियों की फिक्र नहीं करते। भारतवर्ष के अखबारों में हमारे नाम और आप जैसे लोगों के चित्र छपवाकर वे अपने कर्तव्य की इतिश्री समझ लेते हैं। उन्हें इस बात की तनिक भी परवा नहीं कि हम जो दान दे रहे हैं उसकी रकम कैसी लूट-खसोट से जमा की जाती है।"

"लेकिन अब किया क्या जाय ?"

"आगे से एक काम कीजिये, शांतिभाई !" गौतम ने कहा, "भविष्य में आप किसीको भी दान दें तो उसकी सूची में लिखियेगा कि ये प——

जो एक वर्मी औरत को ठगकर जमा किये गये हैं···,यह अमुक रकम जो एक वर्मी का धान का खेत हड़पने पर प्राप्त हुए हैं···,यह रक़म जो दस गुजराती नौकरों का शोषण करके बचाई गई है···,मैं इस अमुक संस्था को दान दे रहा हूं। यह इबारत लिखकर आप दान दिया कीजिये।"

"तो आपकी राय है कि भारतवर्ष में सेवा-कार्य करनेवालों को चंदा जमा ही नहीं करना चाहिए! हम लोगों से उन्हें कुछ भी आशा नहीं रखनी चाहिए!"

"मेरी राय तो यह है कि हमारी आमदनी पर पहला हक खुद वर्मी लोगों का, वर्मा के वर्मी-समाज-सेवकों का होना चाहिए।"

बातों-ही-बातों में रात हो गई थी। काफी देर हुई जान सब लोग उठ खड़े हुए। उठते-उठते शांतिदास सेठ ने याद दिलाया, "अरे, कल तो फो-संई के नाच का कार्यक्रम है। डॉक्टर, तुम इन लोगों की संस्कृति के हरदम गीत गाया करते हो तो चलो, कल देख ही आवें? पांचसौ डूबंत खाते ही सही, वही ले जाय बेचारा। वर्मी लोग तो फो-संई के पीछे पागल हैं। फो-संई आ गया तो अब वे खाना-पीना ही भूल जायंगे। सबकुछ इसके नृत्य पर कुर्बान हो जायगा।"

"सवासौ नर्तकियों की फौज-की-फौज रखे हुए है, मेरा यार!" तीसरे ने कहा।

"नाच में ही वर्मा जानेवाला है," शामजी सेठ ने कहा, "तो खुशी से जाय! दो कुछ बेचारे फो-संई को और राजी करो डॉक्टरसाहब को। वर्मी संस्कृति की दीवाली में पचास-पचपन की बत्ती ही सही।"

और इसके बाद सबने अपने-अपने घर की राह ली।

: १५ :

सवासौ नातमियों की एक बड़ी-सी सेना !

'ना' मछली को और 'तमी' लड़की को कहते हैं। बर्मा में नर्तकी को 'नातमी' यानी 'मत्स्यकुमारी' कहते हैं। मछली से मिलती जुलती शरीर-रचना, मछली-जैसी तरलता और मछली के समान ही कोमलता।

नातमी का दूसरा अर्थ नाट (यक्ष) की तमी (कन्या) यानी अप्सरा भी होता है। ऐसी सवासौ परियां एक साथ पीमना शहर में आई हुई थीं। फो-सई के नृत्य बर्मी लोगों को पागल कर देते हैं। हमारे यहां उदयशंकर है और यहां फो-सई। वही नटराज फो-सई पीमना में आया हुआ था। उस दिन उसकी मंडली 'ती ज्या प्वे' यानी इंद्र-इंद्राणी का नृत्य-नाटक करनेवाली थी।

दीवारों से घिरे हुए चौक में एक सीधी-सादी रंगभूमि थी। रंगभूमि के दोनों ओर दो 'विंग' थे और शेष सब खुला हुआ। 'विंग' के पीछे से नाचनेवाले रंगभूमि पर आते और नाटक करते थे।

दूधपीते बच्चों को गोद में लेकर बर्मी ललनाएं नाटक देखने के लिए आ रही हैं। पुरुषों के हाथ में बच्चों की गादियां और एक-एक चटाई है। दो-दो रुपएवाली टिकटें खरीदकर दर्शक अंदर प्रवेश कर रहे हैं। रंगभूमि के सामनेवाली जमीन पर चटाइयां बिछाई जाती हैं और परिवार उनपर बैठते हैं। बच्चों को उनकी मुलायम गादियों पर सुला दिया जाता है। कोई जगह के लिए झगड़ा नहीं करता। किसीको जगह कम नहीं पड़ती। धरती माता की विस्तृत गोद सबके लिए फैली हुई है। दर्शकों में किसी तरह की घबराहट नहीं है। सब लोग निश्चित और आराम से घुटनों के बल बैठे हैं।

फर्शवालों की पिछली बाजू में बिल्कुल अंतिम छोर पर कलठांइयां रखी गई हैं।

'कलठांइयां' कहते हैं कुर्सियों को। 'कला' का अर्थ हुआ समुद्र के उस किनारे पर से आये हुए भारतीय और 'ठांई' याने बैठकें। भारतीयों की बैठक कुर्सी। वह बर्मी लोगों के देश का आसन नहीं। भारतीयों के देश का भी नहीं, उन्होंने विदेशियों की नकल की है।

इन कलठांइयों पर एक भी बर्मी नहीं बैठा। भारतवासी आ-आकर बैठ रहे हैं। गुजराती व्यापारियों के परिवार कुर्सियों पर आसीन हुए। सबके साथ चटाइयों पर बैठना उन्होंने अपनी मान-मर्यादा के विरुद्ध समझा।

हेमकुंवर के साथ डॉक्टर नौतम ने अंदर प्रवेश किया तो व्यवस्थापक आकर उन्हें उनका कलठांईवाला स्थान बतला गया।

"आइये, इधर आइये, डॉक्टरसाहब !" सेठजी ने आवाज दी।

"जी नहीं, यहां भी इनसे अलग कटे-छंटे ? हम तो सबके साथ ही बैठेंगे।"

यह कहकर वे लोग तो आगे बढ़ गये और उधर शामजीसेठ ने मजाक किया, "इस जरा-सी कुर्सी पर डॉक्टर-पत्नी समायेंगी भी तो नहीं !"

उनके पीछे मनसुखलाल का परिवार था। गुजराती मनसुखलाल, उसकी बर्मी पत्नी और साथ में युवती पुत्री।

शांतिदास ने कहा, "इस मनसुखलाल ने पूरे बीस वर्ष बाद अपना विवाह-संबंध प्रकट किया।"

"इतने साल क्या उसे रखैल के रूप में रखे रहा ?" दूसरे ने पूछा, "इसी तरह न ?"

"नहीं तो, बाक़ायदा पत्नी के रूप में। सिर्फ विवाह नहीं किया था।"

"देश में उसकी विवाहिता स्त्री है ?"

"नहीं।"

"फिर रखैल कैसे कह सकते हैं ?"

"विवाह तो अब भी नहीं किया, परंतु लड़की धींगरी हुई, उसे कहीं ठिकाने से जो लगाना होगा, इसलिए विवाह-संबंध प्रकट किया है।"

"ये रहे नेताजी!" सबके पीछे चले आते एक युवक को देखकर रामजी सेठ बोले। वह युवक रतुभाई था। रंगून की चावल-मिलें छोड़कर उसने फिर से पीमना में सोने-जवाहरात का अपना पुराना धंधा अपना लिया था।"

"क्या खूब जोड़ी मिली है! लड़की को कहीं वर नहीं मिलता और लड़के को कोई वधू नहीं देता!"

"इसी तिकड़म में लगा है शायद!"

वे सबके-सब आगे चले गये और वर्मी लोगों के साथ अपनी-अपनी चटाइयां बिछाकर बैठ गये।

चटाई पर बैठकर चारों ओर देखते हुए गौतम ने पत्नी को दिखलाते हुए कहा, "नीम्या को देखती हो?"

"कहां?"

"वह रही।"

"अरे, उसके पास तो बच्चा भी है। हमें तो उसके बच्चे के लिए भेंट ले जाने की भी याद नहीं रही।"

इतना कह हेमकुंवर अपनी जगह से उठी और दूर एक चटाई पर बैठी हुई नीम्या के पास गई। फिर चुपके-से उसकी कमर में चिकोटी काट उसे चौंकाया और उलहना दिया।

"हमें खबर तक न दी, क्यों?"

"अरे, मरते-मरते बची!" नीम्या ने प्रसव-वेदना की बात सुनाई।

"फिर हमें क्यों नहीं बुलाया?"

"ये हजरत लजाकर बैठ रहे!" नीम्या ने पति की ओर आंखों से इशारा करते हुए कहा।

"अब तू क्या करती है? मां की दुकान पर बैठने लगी या नहीं?"

"नहीं, अभी तो रतुभाई से चीजें लेकर बेचती हूं।"

"तू तो बहुत ही दुबली हो गई, री!"

"कहां होगई दुबली?" नीम्या वर्मी नारी थी। उसकी आवाज में

दुर्बलता हो ही नहीं सकती। "यह तो बच्चा दूध-पीता है, इससे ऐसी दीखती हूं। बाकी खूब मजे में हूं। बल्ला कहां है ?"

"घर नौकर के पास छोड़ आई हूं।"

"गजब की छाती है तुम्हारी ! कहीं घर भी छोड़ा जाता है बच्चों को ? यह देखो न हमारे सब बच्चे यहीं चैन से सो रहे हैं।"

"मुझे क्या पता था कि यहां इस तरह की बैठकें होंगी ? अब तू फो-संई के नृत्य की हर मुद्रा को सीख लेना। फिर किसी दिन कमल में नाचना पड़ा तो काम आयेगी। अब भी नाचती है तू ?"

"हां; नाचती हूं ! बूढ़ी हो जाऊंगी तब भी नाचना नहीं छोड़ूंगी।" इतना कहकर उसने सढ़ों संवारा।

"और यह हजरत गुमसुम क्यों बैठे हैं ?" हेमकुंवर ने नीम्या के पति की शक्ल देखकर कहा।

"नहीं तो ! बैठे-बैठे चैन से सेले फूंक रहे हैं।"

"कोई खास बात तो नहीं है ?"

"बिल्कुल नहीं। चैन है। मजे से कटती है।"

दोनों की बातें बंद हो गईं। घुंघरू, नूपुर तथा किसी विशेष टीम-टाम के बिना रंग-मंच पर नृत्य शुरू हो गया था। जब नृत्य शुरू हुआ और हजारों आंखें उस ओर लग गईं तो नीम्या का पति सबकी निगाहें बचा कलठांईवाले हिस्से की ओर आंखें गड़ाकर देख रहा था।

छब्बीस वर्ष का एक युवक मंच पर आया। वह फो-संई नहीं; उसका पुत्र था। फो-संई ने बुढ़ापे के कारण अब मंच पर आना बंद कर दिया था। युवक के पांव थिरकने लगे। उसके साथ नर्तकियों का एक वृंद था। वह उनमें से प्रत्येक के पास जा-जाकर सह-नृत्य करने लगा। थोड़ी देर बाद पहला पटाक्षेप हुआ।

कलठांईवाले दर्शक आपस में बातें करने लगे।

"ये फो-संई के नाच तो सचमुच लुभावने हैं ! इन्हें देखकर बर्मी

लोगों के दिल का बैर कुछ हो मगर तो स्वाभाविक ही है।"

"वह देखो न, कुन्न-कुन्नी बाहर जाने लगे हैं।"

"अपने इनके ही बच्चों के माता-पिता उन्हें छूने दीजिए।"

"अच्छा ही है। हमारा तो कोई नुकसान नहीं। इन लोगों के भाव-रूप में ही हमारी भलाई है।"

"परंतु तुमने कुछ उस तरह के विचार रहे हैं। वे भाव-रूप उन्हें छूने फोटों भी नहीं छुड़ाते।"

"तदींग्यु का प्रदर्शन देखा था ?"

तदींग्यु कहते हैं दीवाली को। वह उत्सव बर्मा में हमारे यहाँ के दीपोत्सव से पन्द्रह दिन पहले पड़ता है। थिंग्यान में जिस मण्डी से बर्मी लोग पानी उछालते हैं, उसी मण्डी में तदींग्यु में दीये जलाये जाते हैं। कागज के फानूस बनाकर उनमें दीये जलाये जाते हैं और अंदर दीये के चारों ओर घूमने वाले विभिन्न आकार-प्रकार के पशु-पक्षियों की रचना की जाती है। नदी के पानी में भी लाखों की संख्या में दीये प्रवाहित किये जाते हैं।

"क्या था उस प्रदर्शन में ?"

"पुतले बनाये हैं। एक स्त्री परी के रूप में आसमान में उड़ती हुई दिखलाई गई है, नीचे धरती पर पाँच बच्चे खड़े बिलख रहे हैं। पुतले पर बड़े-बड़े अक्षरों में लिखा है—"माता का दुष्परिणाम।"

"रहू है बड़ा उस्ताद !"

"क्यों ?"

"मलमुलताल को बर्मी छोकरी तो कभी की बाहर निकल गई, पर वह अभी तक यहीं डटा हुआ है। उसे का नाम तक नहीं लिया।"

"यह सब हमें दिखाने के लिए है; बाकी वैसे तो सबकुछ पक्का हो चुका है।"

दूसरा नृत्य शुरू हुआ।

फो-संई-कुमार ने इस बार इंद्र के रूप में प्रवेश किया। इंद्र की भूषा में कोई विशेषता नहीं थी। वह सिर्फ रंगबिरंगी लुंगी, एंजी र घाऊंबाऊं बदलकर आ गया था। हां, उसे इंद्र के रूप में पहचाना सकता था सिर्फ उसके आभूषणों द्वारा। हाथ की अंगुलियों में गजड़ी अंगूठियां और एंजी के बटन हीरे-से जगमगाते हुए थे। बस तने ही आभूषण उसे दूसरे पात्रों से पृथक् करनेवाले थे। और सबमें उसकी विशेषता प्रदर्शित करनेवाला तो था उसका रूप और उसका नृत्य।

उसके साथ-ही-साथ एक विदूषक भी था। विदूषक ने अपना किस्सा शुरू किया "नाचने की शक्ति है भी? मेरे मृदङ्ग बजानेवाले की ताल का साथ दे सके तभी तू सच्चा इंद्र है।"

"तैयार हूं।"

"माल्वामे।" (—थक जायगा)।"

"ममो बावू" (—नहीं थकूंगा)।"

फिर तो मृदङ्ग की थपकी और उस नटराज के पांवों की थिरकन में जैसे होड़ ही लग गई। नटराज ने संकड़ी लुंगी के वर्तुल में पांवों की कड़ियां ही बिछा दीं। मृदङ्ग ने उन कड़ियों को भी छिन्न-भिन्न कर दिया। इंद्र का सांस भर आया। उसने पसीना पोंछने को हाथ उठाया ही था कि विदूषक चिल्ला उठा, "मोत्वारे!" (—थक गया, बस!"

"ममोदेवु, खीम्या! ममोदेवु। (नहीं थका, भाई। नहीं थका! बजाओ मृदङ्ग, जोर से बजाओ।"

और इसके बाद नृत्य ने जो वेग पकड़ा, वह सारे दर्शक-वर्ग स्तंभित कर देनेवाला था। दर्शक सांस लेना भी भूल गये। और स ज्यादा धड़कन तो हो रही थी नीम्या की छाती में। क्या होगा? कहीं थककर हार तो नहीं जायगा? "हे फया प्रभु, मेरी संपूर्ण शक्ति मिल जाय। और वह विजयी हो। नृत्य विजयी हो। सबकुछ जाय मेरे देव, पर एक नृत्य न हारे।"

—और अंत में नृत्य की गति के आगे मृदङ्ग बजानेवाला ता गया। दर्शकों ने तालियां बजा-बजाकर आसमान सिर पर उठा नीम्या का हृदय अलक्ष्य में फया के आगे नतमस्तक हो गया।

: १६ :

सवेरा होने तक यह तिज्यां थ्वे चलता रहता है। पुरुष थक जाते हैं, परंतु वर्मी नारियों की रस-पिपासा अंततक वैसी ही बनी रहती है। रात को तीन बजे के लगभग जब कलठांई पर बैठे हुए लोग उठ खड़े हुए तो नीम्या के पति ने कहा, "नीम्या !"

"शिय (जी) !"

"मुझे तो अब झपकियां आने लगी हैं, मैं जाऊं ?"

"जाओ। मैं तो पूरा देखकर ही आऊंगी।"

"अच्छी बात है।"

यह कहकर वह जल्दी से बाहर गया और एक अंधेरे कोने की ओट लेकर खड़ा हो गया। फिर उसने अपनी धा निकालकर हाथों में पकड़ ली। न तो उसने दांत भींचे और न उसका शरीर ही कांपा। उसकी आंखों में खून भी न उतरा। सिर्फ धा को हाथों में मजबूती से पकड़े वह अवसर की प्रतीक्षा करने लगा। थोड़ी देर बाद एक आदमी वहां से गुजरा और पीछे से उसकी गर्दन पर माऊन्पू की धा का वार हुआ।

दूसरे दिन सवेरे गुजराती समाज में यह खबर फैल गई कि शांतिदास सेठ की दुकान के बड़े मुनीमजी को किसीने कत्ल कर दिया है।

खेल खतम होने के बाद नीम्या जब घर पहुंची तो उसका पति आराम से लेटा खर्राटे भर रहा था। उसने पति को उस दिन सोने के मोल-तोल में ठगने और झगड़ा करनेवाले आदमी के मारे जाने की खबर सुनाई तो उत्तर में पति हंस दिया। नीम्या सब समझ गई। मन-ही-मन कांप उठी और जहर का घूंट पीकर रह गई। चूंकि

ाई-गई हो गई । वर्मी पुलिस ने भी इस खून को गाजर-मूली काटे जाने
ज्यादा महत्व नहीं दिया ।

खूनी का पता न चला । लेकिन उस दिन के बाद नीम्या के पति
का आलस्य दिन-पर-दिन बढ़ता ही गया । वह बरामदे में चटाई पर
पड़ा सेले का धुआं उड़ाया करता और धुएं के लच्छों में सांप, हाथी,
सिंह, मोर आदि के अनगिनत आकारों की कल्पना करता हुआ उस धुएं
को मदहोश आंखों से देखा करता था । न तो वही किसीसे यह पूछता
कि तुम कहां जाते और क्या करते हो; और न उसीसे कोई यह कहता
था कि उठ और काम-धंधे से लग । बुढ़िया अब भी मछली बेचने जाती
थी और बूढ़ा बंटाई के खेत में धान बोने का काम करता-करवाता था ।
नीम्या अपने बच्चे को पीठ पर बांध बाजार जाती थी । खुद गर्मी-सर्दी
सहती थी । मारे कमजोरी के उसका जोड़-जोड़ दुखता था, खाने को सिर्फ
भात-मछली का भोजन मिलता था, फिर भी उस वर्मी औरत को अपने
दुर्भाग्य पर रोने और बैठकर पीड़ा-वेदना की चिंता करने का अवकाश
नहीं था; यह बात उसके स्वभाव में ही नहीं थी । पति क्या करता है
कहां जाता है, 'अपांऊ शाप' में जाकर वह घर की कौन-सी चीज बे
आया है, इसके बारे में न तो वह कभी कुछ पूछती थी और न इस ओ
ध्यान ही देती थी । उसे इस बात से भी कोई मतलब न था कि वह
लुंगी, एंजी और धांऊ-बांऊ के लिए पैसे कहां से लाता है ! पति
रात में देर से आना शुरू किया तो उसे भी उसने सहज स्वाभा
समझकर स्वीकार कर लिया था । आधी रात बीतने के बाद कोई
तीन बजे आकर वह किवाड़ खटखटाता और पुकारता "नीम्या
और वह तुरंत उत्तर देती, "शिय !" और फिर जीने पर चप्प
आवाज सुनाई देती और तुरंत दरवाज़ा खुलता । दूसरी बार
देने की कभी आवश्यकता ही नहीं पड़ती थी । न दरवाज़ा ख
बाद कोई दूसरा शब्द ही सुनाई पड़ता था । निस्तब्ध रात्रि
में बस एक ही पुकार और उसका एक ही प्रत्युत्तर—"नीम
"शिय !" पड़ोसियों ने कभी इसके सिवा दूसरी कोई
सुनी । इसी तरह महीनों बीत गये । रात को बालक के सो

नीम्या बैठी, प्रत्येक बर्मी नारी का पांचवां कर्तव्य पूरा करती रहती थी, और वह कर्तव्य है पति के फटे-पुराने कपड़े सीने का।

दूसरा एक गुण बर्मी समाज में यह भी था कि कोई सगे-संबंधी या पड़ोसी-पड़ोसी आकर इस बात का पुराण नहीं गाते कि तेरे पति को फला काका[1] के होटल में गप्पें हांकते या अमुक-अमुक बदनाम गली में रात को अकेले भटकते देखा था।

ले-देकर सिर्फ एक ही आनेवाला था और वह थी हेमकुंवर। उसे नीम्या के स्वास्थ्य के निरंतर गिरते जाने से बड़ी चिन्ता होती थी। ऊपर से पुरुष का घर बेकार बैठकर खाना उसे काठियावाड़ी होने के नाते और भी बुरा लगता था। दो-एक बार उसने उलहना भी दिया कि यह घर बैठा क्या करता है? क्या इसे तुमपर जरा भी दया नहीं आती? कह-सुनकर इसे जरा डॉक्टर के पास ही भेज दे तो कहीं-न-कहीं चिपका देंगे। और इसका मन में मटरगश्ती करना हो तो तुझे तुरत बंद कर देना चाहिए। तू तो बर्मी औरत है। कुछ हमारी तरह परवश-पराधीन तो है नहीं।"

"सच है।" नीम्या ने उत्तर दिया, "हम बर्मी नारियों के नारी-स्वातंत्र्य की यही तो विशेषता है। विवाह से पहले हम अपना पति चुनने के लिए पूरी तरह से स्वतन्त्र हैं। इस विषय में माता-पिता की इच्छा के विरुद्ध विद्रोह भी करती हैं; लेकिन विवाह के बाद परिस्थिति एकदम बदल जाती है। यदि वह मेरी स्वतन्त्रता में बाधक हों तो मैं उसके धुर्रे बखेर दूं, लेकिन इसके सिवा तो उनका मौन और सम्पूर्ण अनुगमन ही हमारा धर्म और हमारा संस्कार है।"

"लेकिन आखिर यह कबतक चलेगा?"

"जबतक हम दोनों में से एक परलोक न चला जाय।"

"यह तो ज्यादती है।"

"तुम्हें क्यों इतना बुरा लगता है? मेरे ऊपर तो इसका कोई असर नहीं होता।"

---

[1] मलबारी मुसलमान।

"जरा अपने शरीर की ओर तो देख, सूखकर सोंठ हो गई है।"

"लेकिन मन तो वैसा ही हरा-भरा है। और हमारे शरीर तुम्हारे से भूरे-पूरे शरीर थे ही कब !" नीम्या हँस दी।

"लेकिन यह जो बुरी आदतों में पड़ गया है, उसे तो…"

"चुप !" नीम्या ने मुंह पर अंगुली रखते हुए कहा, "वह मेरे अधिकार-क्षेत्र से बाहर की बात है। मुझे उसकी याद मत दिलाओ।" वह अपने हरएक वाक्य के बाद हँसी की पुट देती जाती थी। "मैं कब और कहां जाती हूं, और क्या करती हूं यह कभी मेरा पति मुझसे नहीं पूछता। फिर मुझे उससे यह सब पूछने का अधिकार ही क्या है ?"

"तेरी मां भी इस बारे में कुछ पूछताछ नहीं करती ?"

"हमारे यहां पति-पत्नी के मामलों में दूसरों का हस्तक्षेप लोकाचार के विरुद्ध समझा जाता है, इसलिए कोई कुछ पूछ-ताछ नहीं सकता।"

हेमकुंवर और डॉक्टर नौतम के बीच, इस विषय में, रात के भोजन के पश्चात काफी लंबी चर्चाएं होतीं। डॉक्टर नौतम एक ही निष्कर्ष निकालते थे कि जिस देश की जनता इस तरह अपने जीवन में सामंजस्य स्थापित करती है उसे अपने जीवन-पथ से एक पद भी विचलित करने का हमें कोई अधिकार नहीं। उसके रीति-रिवाजों में यदि कभी कोई परिवर्तन होने को होगा तो खुद वही क्रांति करेगी उनका सुधार करने की गरज से हमें तो कभी भूलकर भी अपने विचा उनके आगे प्रकट नहीं करने चाहिए।

"लेकिन उसका वह घरवाला…"

"अच्छा, यह बतला कि यदि वह अपङ्ग या मूर्ख होता तो उसे करना चाहिए था ?"

"वैसी दशा में तो पत्नी को उसका पालन-पोषण कर पड़ता।"

"बस, तो यही समझ ले कि मन-प्राण का भी एक तरह का पन होता है।"

"लेकिन यह पागलपन तो किसी एक व्यक्ति-विशेष का नह जनता का है।"

"ठीक है, लेकिन ये लोग अपने समस्त पागल पुरुषवर्ग को किसी गोरे या गुजराती के पागलखाने में भर्ती कराने ही कब गये हैं ? इसकी अपेक्षा तो यही ज्यादा अच्छा है कि यहां का स्त्रीवर्ग, जो पुरुषों की अपेक्षा अधिक शक्तिशाली, स्वतंत्र और आर्थिक दृष्टि से अधिक स्वावलंबी है, अपने निबल पुरुषवर्ग का पालन करे और यही वे लोग कर रहे हैं।"

"लेकिन क्या किसी दिन उन्हें सचेत न किया जाय ?"

"मेरा तो कहना है कि नहीं। जिस दिन पुरुषों को अपनी इस निर्बलता और परावलंबन का भान हो जायगा, स्त्रियों की आजादी समाप्त हो जायगी। कमानेवाला ही आजाद रह सकता है। बाकी इतना निश्चित है कि तेरे साथ विवाह होने से पूर्व यदि मैं यहां आया होता तो किसी कमाऊ बीवी का शौहर बनकर मजे से बैठा हुक्का गुड़गुड़ाया करता।"

"अभी भी क्या बिगड़ा है, यह शौक भी पूरा कर लो।"

"कमा-कमाकर खिलानेवाला एक लद्दू बैल जो मिल गया है, इसलिए तू तो ऐसा ही कहेगी !"

यह कहकर डॉक्टर गौतम ने समीप ही सोये हुए बच्चे की पीठ पर हाथ फिराया।

"जोरू की कमाई खाने में बेस्वाद होती है, इतना कहे देती हूं।"

"तुझे तो मेरी कमाई स्वादहीन नहीं लगती। जरा कमाना तो शुरू कर, फिर देखना कितने मजे में बैठा स्वाद ले-लेकर जिंदगी के दिन बिताता हूं। सच कहता हूं, कम-से-कम सात जनम की थकावट तो होगी ही। तेरे गले की सौगंध।" इतना कहकर डॉक्टर ने उसका गला छू लिया।

"देखा, देखा ! कमाकर खिलानेवाले हो, यही न ?" और हंसकुंवर ने हाथी की सूंड-जैसे दोनों हाथ पति के गले में डाल दिये।

इधर जब यह बाबू-परिवार यों सुख की नींद सो रहा

...ना शहर के फुटपाथ पर एक दूसरी ही घटना घट रही थी।
एक चीनी दुरियान बेच रहा था। दुरियान बर्मा का एक खास तरह ...ा फल होता है। आकार-प्रकार में बिल्कुल नारियल जैसा और ऊपर ...ा अनन्नास जैसा कटीला। चीरने पर अंदर से पांचेक गूदेवाली फांकें निकलती हैं। फांकों के अंदर पीले रंग का जो गूदा होता है वह अमृत के समान मीठा होता है। उसकी महक कई लोगों को बुरी लगती है, लेकिन बर्मियों के मस्ताने स्वभाव को तो वह सुगंध और भी मस्त करने-वाली होती है।

ऐसे उस मधुर और महंगे दुरियान को बहुत-से लोग-बाग रात के ठंडे प्रहर में खरीद-खरीदकर खा रहे थे और एक आदमी वहीं थोड़ी दूर खड़ा टुकुर-टुकुर देख रहा था।

उसे भी दुरियान खाना था। उसने जेब में हाथ डाला। पास में सिर्फ आठ आने पैसे थे।

"घी दुयेंदी भेभ्केले ?" उसने पास पहुंचकर चीनी से एक दुरियान का भाव पूछा।

"तो-मा।" चीनी ने अकड़कर बारह आने दाम कहे।

"लेकिन यह तो छोटा है। आठ आने में देगा ?"

"त्वा, त्वा, मीं मसा नाईबु ! (जा-जा, तू क्या दुरियान खायेगा...) भेरो मा क्यी भूदला ? (कभी दुरियान देखा भी है ?)"

"क्या बकता है ?" मारे क्रोध के ग्राहक आग-बबूला हो ग... "मेरे देश में पैदा हुआ यह दुरियान और तू परदेशी चीनी मुझसे क... है कि मैंने दुरियान देखा भी है या नहीं ? तेरी इतनी हिम्मत ?"

इतना कहकर ग्राहक ने टोकरे में से एक दुरियान उठाकर ... सौदागर के चेहरे पर दे मारा। चीनी की चपटी नाक बिल... चपटी हो गई। कंटीले दुरियान ने उसके नाक-मुंह को लहूलुह... दिया। मारनेवाला पलक मारते ही गायब हो गया और घर... उसने आवाज दी—"नीम्या ए......!"

"शिय ! (जी)" प्रलंबित उच्चारणवाला मधुर स्वर प्रत्युत्तर में सुनाई दिया।

सैंकड़ों-हज़ारों दुरियान भी इस स्वर के माधुर्य की समता नहीं कर सकते थे।

फिर भी मांऊ-पू का हृदय कसकता ही रहा कि हाय वह नीम्या के लिए दुरियान नहीं ला सका, नहीं ला सका !

: १७ :

हमेशा की तरह आधी रात को आवाज सुनाई दी, "नीम्या ए।"...

हमेशा की तरह ऊपर से प्रत्युत्तर आया, "शिय ! (जी)"

और सदा की भांति सीढ़ियां उतरकर नीचे आती हुई पत्नी के फना
ी धीमी आवाज़ सुनाई दी।

दर्वाज़ा खुलता फिर वंद हो जाता है। दूसरा और कोई शब्द सुनाई नहीं पड़ता। सिर्फ रात्रि का सन्नाटा व्याप्त है, सांय-सांय करता हुआ !

थोड़ी देर के बाद दीये का प्रकाश दिखलाई पड़ता है। सोई हुई नीम्या के चेहरे पर घड़ीभर के लिए पुरुष की आंखें रुक जाती हैं, और सवेरे उस घर के तीन निवासियों में से एक कम हो जाता है।

सुबह उठकर नीम्या को अपने विस्तरे पर एक चिट्ठी मिली। उसने पढ़ी—

"चिनि पाईसां टम्यामा मयावु। धी लो अला फया सु वुघु मा मलोवाने।"

(उसकी जेव में से तांवे का एक पैसा भी नहीं निकला। ईश्वर के नाम पर कोई ऐसा काम न करे।)

लिखावट पति के हाथ की थी; परंतु उन दो वाक्यों का कुछ भी अर्थ नीम्या की समझ में न आया। वह कौन-सा काम है, जिसे को न करे और किसकी जेव में से एक भी पैसा न मिला? क्या मतलव इस सवका?

कागज का यह पुर्जा रखकर वह कहां चला गया?

पर धीरे-धीरे इन वाक्यों में छिपा हुआ गूढ़ अर्थ नीम्या की स

में आने लगा। कोई दुष्कर्म, किसी तरह का धोखा करके तो वह भाग नहीं गया!

दिन निकलते ही उस पुर्जे का अर्थ नीम्या की समझ में पूरी तरह से हीं आ गया। पुलिस आ गई थी। रात में किसी चेट्टी की हत्या हुई थी और हत्यारे का सुराग नीम्या के घर में लगा था। पुलिस ने पूछताछ शुरू की—

पति क्या धंधा करता था? घर में पैसे देता था या नहीं? क्या नये कपड़े, घड़ी, अंगूठी आदि चीजें खरीदकर लाया था? इन चीजों के दाम किसने चुकाये थे? आदि आदि।

नीम्या की आंखों में से निःशब्द आंसू बरसने लगे। कुछ दिन पहले, अरे, अभी दो ही दिन पहले पति उसके और बच्चे के लिए नये कपड़े और गहने लाया था। उसने कहा था कि उसे एक अच्छी नौकरी मिल गई है!

उसने उन नये वस्त्राभूषणों को हाथ भी नहीं लगाया था। वह तो बैठी-बैठी विवाहित जीवन का पावना कर्त्तव्य—पति के फटे-पुराने कपड़ों की मरम्मत करना और उन्हें धो-सुखाकर, उनकी घरी करके अल्मारी में रखने का काम करती रहती थी।

पुलिस आवश्यक बातें पूछ-ताछ करके चली गई। नीम्या घर के सब दर्वाजे और खिड़कियां बंद कर घुटनों के बल बैठ गई और रोने लगी। उसके रुदन में से रह-रहकर एक ही अस्फुट स्वर सुनाई होता था—

"मत्तां नाई यू। मसा नाई यू! (मैं सह नहीं सकती। ओह मेरे राम! मैं इसे सह नहीं सकती।)"

अब उसकी समझ में आया कि पति का व्यवहार ऐसा क्यों हो गया था! क्यों वह रात को देर से घर आता था? क्यों बेकार बैठा-बैठा सेले फूकता रहता था? उसने ज्यादा बोलना-चालना भी क्यों छोड़ दिया था? क्यों न तो वह प्रेम करता था और न कभी गुस्सा ही होता था? इस सबका मतलब अब उसकी समझ में आया। शांतिदास सेठ के मुनीम का खून करने के बाद से उसकी पा किसी अशुभ क्षण में दगा-बाजी की ओर मुड़ गई थी। उसका बर्मी स्वभाव पूरी तरह से ...

का था। नुंपेम्या। (रुपये) तो दूर चंद टभ्या (पैसों) के लिए भी उसे नर-हत्या के भीषण कुकर्म की ओर प्रवृत्त कर देती थी।

थोड़ी देर बैठकर नीम्या रो ली। ज्यादा रोने का भी उस बेचारी को अवकाश नहीं था। दूसरे दिन जब उसकी मां ढो-स्वे उससे मिलने आई तो वह काग़ज़ के फूल लेकर बेचने बाजार को चली गई थी। मां बाज़ार में जाकर उससे मिली और थोड़ी ही देर में उनका रोना-धोना और आश्वासन वगैरा का काम निपट गया। ज्यादा वक्त खोने की गुंजाइश ही नहीं थी। दुनियादारी की झंझटें यदि न होतीं तो आदमी अपने दुःख को कैसे भुला पाता!

हेमकुंवर नीम्या के घर आई तो उसे इस परिवार के रहन-सहन में किसी महान विपत्ति या शोक का एक भी बाह्य चिह्न दिखाई नहीं दिया। घर हमेशा की तरह साफ-सुथरा था। वेणी का श्रृंगार और उसमें पुष्प-गुंथन भी हमेशा की ही तरह थे। और तो और, नीम्या के वदन से हमेशा की तरह तनाखा की सुगंध भी आ रही थी।

हेमकुंवर को देखकर उसकी आंखें भर आईं, लेकिन दूसरे ही क्षण अपने उमड़ते आंसुओं को पीकर वह सदा की भांति उससे बातें करने बैठ गई। हेमकुंवर ने पूछा,

"कहां गया होगा ?"

"कौन जाने ? सिर पर मौत नाच रही है।"

"लौट आने की कोई भी आशा नहीं ?"

"बिल्कुल नहीं।"

"तू तो मां के यहां रहने चली जायगी ?"

"नहीं तो, मेरे बूढ़े सास-ससुर को कौन पालेगा ?"

"तुम्हारे यहां तो पुत्री को मां की विरासत मिलती है ?"

"हां, मिलती तो है, लेकिन उसकी ऐसी कोई चिंता नहीं।

: १८ :

लेकिन वही गंभीर चिंता का विषय बन बैठा। बाप की बीमारी की खबर पाकर नीम्या अपनी मां के घर गई। पिता का स्वस्थ और सबल शरीर पानी में नमक की डली की तरह तेजी से घुल रहा था। लड़की के दुर्भाग्य का आघात वह धर्मी पिता सह न सका। जिस आघात को मां ने रो-धोकर सह लिया था उसी आघात ने पिता को अंदर-ही-अंदर से खोखला बनाना शुरू कर दिया। वह झुंझलाता या क्रंदन नहीं करता था। चुपचाप बैठा चुरुट फूंकता रहता था। एक दूसरे में उलझते हुए धुएं के लच्छे उसके मन की उलझन को व्यक्त करते थे। वह बैठा-बैठा ही घुलने लगा।

नीम्या आई तो पिता ने सदा की भांति मुस्कराकर उसका स्वागत किया। इससे अधिक न तो वह रोया और न उसने विस्तार में कुछ पूछ-ताछ ही की। अपने मन की वेदना उसने मन के अंदर ही धधकती रहने दी।

डॉक्टर नौतम के इलाज से भी कोई फायदा नहीं हुआ।

एक दिन सवेरे डॉक्टर नौतम के घर आदमी आकर कह गया, "सोना चाची के पति गोंबी (मर गये)।" रतुभाई के घर भी यह सूचना पहुंच गई थी। डॉक्टर नौतम हेमकुंवर और रतुभाई को साथ ले मातमपुर्सी के लिए सोना चाची के यहां पहुंचा।

घर के आंगन में एक तंबू तानकर उसके नीचे एक बड़ी-सी नई पेटी रखी गई थी और उस पेटी में शव रखा गया था। पेटी चारों ओर से इस तरह बंद की गई थी कि उसमें कहीं से हवा जाने का रास्ता नहीं था। गुजराती परिवार ने पेटी पर फूल चढ़ाये।

नीम्या के पिता को मरे चौवीस घंटे हो गये थे । एक ओर खांऊ[1] (शव-मंजूषा) वनाई जा रही थी तथा दूसरी ओर शव को सुगंधित जल । स्नान कराकर और कपड़े पहनाकर तैयार किया जा रहा था । पिता के पांव के अंगूठे में नीम्या के वाल की लटें तोड़कर वांधी गईं । इन चौवीस घंटों में जिसे रोना था, वे रो भी लिये थे ।

खांऊ के पास चौक में तंतुवाद्य वजाये जा रहे थे । वजानेवाले सब सगे-संवंधी ही थे । वाजों के सुर मरण के अवसर के अनुरूप ही थे । कुछ लोग पास में वैठे खा-पी रहे थे और कुछेक ताश खेल रहे थे । जुआ और शराव का दौर भी चल रहा था । हर तरह से इस वात का आभास दिया जा रहा था कि मृत्यु कोई आकस्मिक और असाधारण घटना नहीं है, वह भी दैनिक जीवन के और-और क्रिया-कलापों की तरह खाने-पीने और हँसी-खुशी से करने जैसी ही एक क्रिया है ।

वरामदे में, जहां दूसरे लोग वैठे थे, रतुभाई और डॉक्टर नौतम भी जा वैठे । उन्होंने समवेदना प्रकट की और घरवालों को आश्वासन दिया "फया लोजिदे लु, घी अलो मशोवु" (—जिसकी भगवान् के यह जरूरत पड़ जाती है वह यहां रह नहीं सकता) ।

पास ही एक थाल पड़ा हुआ था । उसमें खोपरे का एक वि प्रकार का खाद्य रखा था । समवेदना प्रकट करने के लिए आनेवाले लोग उसमें से मुट्ठे भर-भरकर खाते जाते थे ।

मातमपुर्सी के वाद घर लौटते समय रास्ते में हेमकुंवर ने "अंदर और सव स्त्रियां तो उत्सव-सा मना रही थीं पर सोना की आंखें रो-रोकर इंगुर-सी लाल हो आई थीं । यों ऊपर से वह खिला-पिला रही थीं और उनकी हँसी-मजाक में भी शरीक हो ज लेकिन जव मुझसे मिलीं तो एकांत में उनकी आंखों से आंसुओं लग गई थी ।"

रतुभाई ने कहा, "सारा पीमना शहर जिसकी धाक मान जवां-मर्द औरत भी इतनी दुःखित हो सकती है । कौन इस

---

[1]साधारण पेटी को 'तोत्ता' अथवा 'तोटा' कहते हैं ।

मानेगा कि इतनी उम्र और गृहस्थी के इतने वर्षों के बाद भी चाची यों रोती हैं !"

"शव को तो अभी पंद्रह दिन घर में डाल रखेंगे।" हेमकुंवर ने एक दूसरी खबर सुनाई।

"नीम्या बेचारी का तो दिवाला ही पिट जायगा।"

"क्यों ?" डॉक्टर गौतम ने पूछा।

"पूरे पंद्रह दिन तक खान-पान और राग-रंग की धूम मची रहेगी।"

"मैं तो चाची से कहनेवाली थी कि बेचारी लड़की को इस कुप्रथा का शिकार न बनाओ।" हेमकुंवर बोली।

"तूने अच्छा ही किया, जो कहा नहीं। मैंने तुझे कितनी बार समझाया है कि हमें इन लोगों का सुधार करने का कोई अधिकार नहीं। यह अधिकार तो अंग्रेजों के लिए ही छोड़ देना चाहिए।"

"बुद्ध की प्रतिमा पर सोना-चांदी के पतरे चढ़ाने की बात भी सोची जा रही है।"

"बना ही देंगे उस गरीब को रास्ते की भिखारिन !"

"लेकिन नीम्या खुद ही मां से आग्रहपूर्वक कह रही थी कि मेरा खयाल करके मेरे पिता की सद्गति न बिगाड़ी जाय।"

"किस-किसको रोयें ? अपने अज्ञान को या उनके अज्ञान को ?" डॉक्टर गौतम ने फिर वही-की-वही बात कही।

"लेकिन यह तो जंगलीपन की हद ही हो गई ! घर में मुर्दा पड़ा हुआ है और लोग-बाग खा-पी रहे हैं। आखिर उनके गले कैसे उतरता होगा ?"

"क्यों, गले उतरने को क्या हो गया ? जब तेरा और मेरा बाप मर गया था तो उनके मरने के ठीक बारहवें दिन ही हमारे हिंदुस्तानी भाइयों के गले मरण-भोज की मिठाई कैसे उतरी होगी ? बात यह है कि आदमी किसी भी प्रकार मौत के आघात को जीतकर स्वाभाविक अवस्था में आने की कोशिश करता है।"

"लेकिन यह घर में मुर्दा···"

"सब जगह एक ही किस्सा है। वहीं यह जंगलीपन अधिक मिलेगा

और कहीं कम। तुझे मालूम है कि हमारे गुजराती भाई श्मशान में क्या करते हैं ?"

"नहीं तो।"

"जलती हुई चिता के सामने बैठकर बीड़ियां फूंकते और चाय पीते हैं। और यह तो तुझे भी मालूम ही है कि यदि कल तू मर जाय तो श्मशान में तेरी अर्थी के सामने ही मेरी नई शादी की बातें होने लगेंगी। सब जगह एक-सा ही है। वहां मृत्यु के समय हमारे ब्राह्मण-पुरोहित लूटते हैं और यहां फुंगी।"

धर्म के नाम पर की जानेवाली इस लूट का दिन—शव की श्मशान-यात्रा का दिन भी आ पहुंचा। शव-मंजूषा के आगे-आगे फुंगियों की एक लंबी-सी कतार चल रही थी। उनमें से प्रत्येक के हाथ में एक-एक पंखा था। पंखे पर सौ-सौ रुपये के नोट चिपकाये गये थे। वे नोट फुंगियों के ही हाथ लगे। शव के अंतिम संस्कार की धूमधाम हो जाने के बाद ही नीम्या की मां को पता चला कि वह हमेशा के लिए लु चुकी है।

: १९ :

अभी तक शिवशंकर की मा ने देश से पत्र लिखवाना बंद नहीं किया था। उसके सभी पत्रों का बस एक ही विषय होता था—"बेटा, किसी तरह हजारेक रुपए जमा करके भेज, ताकि मैं कहीं तेरी शादी ठीक कर सकूं। इतनी रकम के बिना कहीं डौल जमता नहीं दीखता। वहां से आनेवाले तेरे कई साथियों ने घर बसाये और दूसरे कई धूम-धाम से शादी करके वापस लौट गये। पता नहीं तू क्यों चुप्पी साधे बैठा है! सुनती हूं कि वहां तुझे नौकरी भी काफी अच्छी मिल गई है। फिर क्यों ढील कर रहा है, बेटा? मैं तो पका आम हू! जाने कब टपक पड़ूं! मरने से पहले बहू को तो देख लूं।"

शिवशंकर ने पत्रों का उत्तर देना ही बंद कर दिया था।

फिर एक दिन बर्मा से दो रिश्तेदार मालणवदर गांव के किसी पास के गांव में आये और उन्होंने जो खबर सुनाई, वह कानों-कान घूमती हुई, रात के समय जब कि वह बैठी माला फेर रही थी, बूढ़ी नरवदा तक भी जा पहुंची।

"क्यों नरवदा काकी, कुछ खबर भी है?"

"ना भैया, कैसी खबर?"

"यही तुम्हारे शिवशंकर की।"

"मेरे शिवा की!" बुढ़िया की तो सांस ही रुक गई। सोचने लगी—कहीं उसने कुछ औंधा-सीधा न कर डाला हो! जालसाजी या रुपया-पैसा खाने का मामला तो नहीं कर बैठा? हे मेरे भोलानाथ! हे महादेव स्वामी! मेरा शिव तो तुम्हारा दिया हुआ है। जो उसने अपनी कुल-परंपरा को बट्टा लगानेवाला कोई काम किया हो तो उसे सुनने से पहले ही मेरी

जीवन-डोर काट देना, मेरे शंभू !

"तुमने बहुत देर कर दी काकी !" बात कहनेवाली ने रहस्यमय ढंग से कहा, "उसीका यह नतीजा हुआ। आखिर नौलखे हार की ममता तुमसे छोड़ी नहीं गई।"

"मुआ कहां का नौलखा हार और कैसी बात !"

"चूल्हे के ठीक नीचे जो गाड़कर रखा है, उसी नौलखे हार की कह रही हूं, काकीजी। उसे बखत से निकाला होता तो आज यह दसा काहे को हुई होती तुम्हारे शिव की।"

"लेकिन हुआ क्या, मेरी मां ?" बुढ़िया अचरज में ही डूबी जा रही थी। परंतु उसके हाथ में माला थी और उसके धार्मिक मन ने उसको धिक्कारा कि मूर्ख ! क्यों, महादेव को झूठा बना रही है। माला फेरते समय तो जरा मन को बस में रख। क्यों फिजूल मन को जुलाहे की रुई की तरह धुनक रही है ? बुढ़िया शांत हुई और उसने जल्दी-जल्दी माला के मनके फेरना शुरू कर दिया। उसने आगे पूछना बंद कर दिया। मन-ही-मन बोली—'खुद ही कहेगी उसे जो कहना होगा सो।

"लो तो फिर कही दूं, काकीजी ! तुम्हारे शिव ने वहां एक बर्मी को घर में डाल लिया है।"

माला के मनके क्षणभर के लिए उंगलियों में ही थमे रह गये, मानो किसीने बुढ़िया की छाती में कसकर घूंसा मार दिया हो। वह फिर दाने फेरने लगी।

"सो तो कुछ नहीं। चलो, ठिकाने से लग गया। परंतु यह हरिशंकर और लछमन जो वहां से आये हैं वे तो बहुत ही बुरी बात सुनाते हैं, काकीजी !"

"क्या कहते हैं, बहन ?"

"कहते हैं कि वह बर्मी औरत मांस-मछली भी रांधकर देती है और तुम्हारा शिव खाता है।"

"होगा बहन! सच-झूठ की तो महादेवजी जानें, पर छोकड़े को

जाति के किसी भी ब्राह्मण ने अपनी बेटी दी होती तो क्या मैं कभी चुप बैठनेवाली थी।"

"हां काकीजी, सच है। अब तो जाति को भी इस मामले पर विचार करना पड़ेगा।"

"जैसी महादेवजी की मर्जी ! हमारा उसमें क्या बस है, बहन !"

माला पूरी होनेतक तो बुढ़िया ने किसी तरह मन को बस में रखा, लेकिन खबर सुनानेवाली पड़ोसिन के जाते ही उसके अंतर में आग की लपटें धू-धू करके उठने लगीं।

—और तो सब ठीक, पर मेरे शिव के जो बाल-बच्चे होंगे उनके शादी-ब्याह का क्या होगा ? और वह बर्मी औरत मेरे शिव के साथ रहेगी कितने दिन ? सुनती हूं कि वे औरतें तो काम-धंधा करनेवाली होती हैं। पति बेचारे तो उनके घर जानवर की तरह या गुलाम की तरह रहते, बच्चे को खिलाते और खाना पकाते हैं। क्या मेरा शिव भी सांझ-सबेरे वहां झाड़ू लगाता होगा ? जोरू के कपड़े धोता होगा ? बच्चों को खिलाता होगा ? या राम जाने क्या करता होगा ? कहीं औरत उसे धमकाती तो न होगी ? शायद पीटती भी हो !

बुढ़िया ने बहुत-सी ऊल-जलूल बातें उस कामरूप देश के बारे में सुन रखी थीं। यह भी सुन रखा था कि यहां हमारे देश में पुरुष स्त्रियों पर जिस तरह की हुकूमत करते हैं ठीक वैसी ही हुकूमत वहां स्त्रियां पुरुषों पर करती हैं। जानकारी और कल्पना के सहारे बुढ़िया ने शिव की दुर्दशा का जो मानसिक चित्र खींचा वह बहुत-कुछ इस प्रकार था :

औरत कुर्सी पर बैठी बीड़ी या हुक्का पी रही है और शिव या तो उसके पांवों के पास बैठा तलुए सहला रहा है या फिर सड़ा-सड़ा खाना बिगड़ जाने की सफाई दे रहा है।

वह जाति-बहिष्कृत कर दी जायगी इस बात का विचार बुढ़िया के मन में क्षणभर के लिए आया और चला गया। अपने अमंगल पर उसका ध्यान ज्यादा देर तक स्थिर न रहा। अपनी संतान की शुभ-कामना में से जीवन-रस ग्रहण करनेवाली वह भारतीय माता व्याकुल हो उठी थी।

वन-डोर काट देना, मेरे शंभू !

"तुमने बहुत देर कर दी काकी !" वात कहनेवाली ने रहस्यमय ग से कहा, "उसीका यह नतीजा हुआ। आखिर नौलखे हार की ममता तुमसे छोड़ी नहीं गई।"

"मुआ कहां का नौलखा हार और कैसी बात !"

"चूल्हे के ठीक नीचे जो गाड़कर रखा है, उसी नौलखे हार की कह रही हूं, काकीजी। उसे वखत से निकाला होता तो आज यह दसा काहे को हुई होती तुम्हारे शिव की।"

"लेकिन हुआ क्या, मेरी मां ?" वुढ़िया अचरज में ही डूबी जा रही थी। परंतु उसके हाथ में माला थी और उसके धार्मिक मन ने उसको धिक्कारा कि मूर्ख ! क्यों, महादेव को भूठा बना रही है। माला फेरते समय तो जरा मन को वस में रख। क्यों फिजूल मन को जुलाहे की रुई की तरह धुनक रही है ? वुढ़िया शांत हुई और उसने जल्दी-जल्दी माला के मनके फेरना शुरू कर दिया। उसने आगे पूछना वंद कर दिया। मन-ही-मन वोली—'खुद ही कहेगी उसे जो कहना होगा सो।

"लो तो फिर कही दूं, काकीजी ! तुम्हारे शिव ने वहां एक वर्मी को घर में डाल लिया है।"

माला के मनके क्षणभर के लिए उंगलियों में ही थमे रह ग मानो किसीने वुढ़िया की छाती में कसकर घूंसा मार दिया हो। फिर दाने फेरने लगी।

"सो तो कुछ नहीं। चलो, ठिकाने से लग गया। परंतु यह हरि और लछमन जो वहां से आये हैं वे तो वहुत ही वुरी वात सुन काकीजी !"

"क्या कहते हैं, वहन ?"

"कहते हैं कि वह वर्मी औरत मांस-मछली भी रांधकर देती तुम्हारा शिव खाता है।"

"होगा वहन! सच-भूठ की तो महादेवजी जानें, पर

जाति के किसी भी ब्राह्मण ने अपनी बेटी दी होती तो क्या मैं कभी चुप बैठनेवाली थी।"

"हां काकीजी, सच है। अब तो जाति को भी इस मामले पर विचार करना पड़ेगा।"

"जैसी महादेवजी की मर्जी! हमारा उसमें क्या वस है, बहन!"

माला पूरी होनेतक तो बुढ़िया ने किसी तरह मन को वश में रखा, लेकिन खबर सुनानेवाली पड़ोसिन के जाते ही उसके अंतर में आग की लपटें घू-घू करके उठने लगीं।

—और तो सब ठीक, पर मेरे शिव के जो बाल-बच्चे होंगे उनके शादी-ब्याह का क्या होगा? और वह वर्मी औरत मेरे शिव के साथ रहेगी कितने दिन? सुनती हूं कि वे औरतें तो काम-धंधा करनेवाली होती हैं। पति बेचारे तो उनके घर जानवर की तरह या गुलाम की तरह रहते, बच्चे को खिलाते और खाना पकाते हैं। क्या मेरा शिव भी सांझ-सबेरे वहां झाड़ू लगाता होगा? जोरू के कपड़े धोता होगा? बच्चों को खिलाता होगा? या राम जाने क्या करता होगा? कहीं औरत उसे धमकाती तो न होगी? शायद पीटती भी हो!

बुढ़िया ने बहुत-सी ऊल-जलूल बातें उस कामरूप देश के बारे में सुन रखी थीं। यह भी सुन रखा था कि यहां हमारे देश में पुरुष स्त्रियों पर जिस तरह की हुकूमत करते हैं ठीक वैसी ही हुकूमत वहां स्त्रियां पुरुषों पर करती हैं। जानकारी और कल्पना के सहारे बुढ़िया ने शिव की दुर्दशा का जो मानसिक चित्र खींचा वह बहुत-कुछ इस प्रकार था:

औरत कुर्सी पर बैठी बीड़ी या हुक्का पी रही है और शिव या तो उसके पांवों के पास बैठा तलुए सहला रहा है या फिर खड़ा-खड़ा खाना बिगड़ जाने की सफाई दे रहा है।

वह जाति-बहिष्कृत कर दी जायगी इस बात का विचार बुढ़िया के मन में क्षणभर के लिए आया और चला गया। अपने अपमान पर उसका ध्यान ज्यादा देर तक स्थिर न रहा। अपनी संतान की शुभ-कामना में से जीवन-रस ग्रहण करनेवाली वह भारतीय माता व्याकुल हो उठी थी।

सारी रात उसने एक बोरे पर किसी तरह करवटें बदलकर काटी और सवेरा होते ही शिवालय में पहुंचकर उसने चुपचाप महादेवजी से प्रार्थना की—"हे मेरे देवाधिदेव, तुम जैसी सलाह दो वैसा करूं। जो तुम हंसकर उत्तर दो तो मैं अपने शिव के पास पहुंचूं। जैसी तुम्हारी इच्छा हो, बतलाना, मेरे देवता। मुझ पापिन के स्वार्थ की ओर ध्यान मत देना मेरे नाथ!"

बुढ़िया को महादेव के त्रिशूल का रंग पहले से ज्यादा सफेद और ज्यादा चमकता हुआ दिखाई दिया। कहीं उसका भ्रम तो नहीं है, इस विचार से उसने मंदिर के पुजारी से कहा, "जरा इधर तो देखना, बाबाजी! शिवजी का त्रिशूल तुम्हें भी हंसता हुआ दिखलाई देता है न? मेरा इष्टदेव हंसकर मेरी मनोकामना का उत्तर दे रहा है।"

"हां मैया।" बाबाजी ने भी उतनी ही श्रद्धा से स्वीकार किया, "भोला-भंडारी है, जैसा भक्त देखता है वैसा उत्तर देता है। मेरा भोलानाथ किसीके साथ झूठ-फरेब नहीं करता। जागता देव है मेरा शिव तो। जाओ मैया, फतह करो अपना काम!"

"जाऊंगी, तब तो जरूर जाऊंगी। पर अकेली क्या जाऊं। अपनी शारदु को भी साथ लेती जाऊं। वह भी घर-गिरस्ती से हाथ धोये बैठी है। उसके साथ अब किसी तरह का कोई झंझट नहीं रहा। उसे भी साथ ले लूं, नहीं तो वह मुंहजली 'बरमनी' (बर्मी औरत) मेरे शिव के धुर्रे ही बिखेर देगी। घर में घुसने देने की तो दूर रही, मुझे अपने शिव से मिलने भी नहीं देगी।"

तैयारी करने को एक ही रात काफी थी। और वहां करना ही क्या था? दो जगह ताले लगाने थे। लेकिन चाबियां टूट गई थीं और ताले को जंग लग गया था। मिट्टी का तेल डालकर ताले साफ किये और गांव में घूम-फिरकर चाबियां जुटा लीं। चार-पांच दिन तक चल-सके इतना सत्तू पीसकर बांध लिया। पानी का मटका रीता करके घर के एक कोने में औंधा रख दिया और घर की रखवाली का भार महादेव-जी को सौंप, जलता दीया घर के आले में रख, 'जरा शहर लड़की के यहां हो आती हूं' कहकर बूढ़ी नरबदा ने माणावदर गांव छोड़ा।

: २० :

"एक औरत आपसे मिलना चाहती है शिवबाबू !" मनान-टी की की जौहरमल्ल दामजी राइस मिल के दरबान ने दफ्तर में आकर शिव-शंकर को सूचना दी।

"कहां है ?"

"फाटक पर।"

"कौन है ?"

"बर्मी तो नहीं, आपके देश की ही कोई मालूम पड़ती है।"

सुनकर शिव चौंका और उसके साथ-साथ गुजराती साथियों ने रजिस्टरों में से सिर उठाकर एक-दूसरे की ओर देखा।

"क्यों शंकर ?" उनमें से एक ने पूछा, "देश में किसी 'बीसनही' को तो नहीं छोड़ आये थे ?"

"बीसनही' या बीसनखी कहते हैं बाघिन जैसी पत्नी को। काठियावाड़ में यह शब्द खूब प्रचलित है और वहां शादी करनेवाले के बारे में अक्सर कहा जाता है कि "भाई, यह तो अब 'बीसनही' के पंजे में पड़ गया है।"

"क्या उम्र होगी ?" शिव ने अकुलाकर पूछा।

"देखने में तो जवान ही लगती है।"

चिंतित शिव मित्रों के हँसी में बुझे वाक्-बाणों का प्रहार सहता हुआ फाटक पर गया। एक औरत बगल में छोटी-सी गठरी दबाये सिमटी-सिकुड़ी एक ओर को खड़ी थी। सिर के बाल अस्त-व्यस्त हो रहे थे। मांग काढ़कर ठीक नहीं किये गये थे। देखनेवाले को लगता कि ये केश कभी भौंरे की तरह काले रहे होंगे, परंतु अब बुद्ध

लटों ने जबरदस्ती घुसकर अपना प्रभुत्व जमाना शुरू कर दिया था। खिचड़ी बालों का भी एक अनोखा रूप होता है। विरले ही उस रूप की ओर ध्यान दे पाते हैं।

उसके नख-शिख, सौंदर्य के बारे में भी यही बात थी। चेहरे की ओर देखनेवाला वर्तमान से एकदम भूतकाल में पहुंच जाता था और मन-ही-मन कहता कि पहले कभी यह स्त्री असाधारण रूपवती रही होगी। वहां दर्शक के मन को तरंगित करनेवाली चीज आज का अवशिष्ट सौंदर्य नहीं, उस सौंदर्य का भूतकालीन आकर्षण और कुतूहल था।

वह न तो विधवा थी और न सधवा ही। वैधव्य और सुहाग के बीच की भी एक ऐसी स्थिति है, जिसका अपना अलग ही अस्तित्व होता है।

समीप आने पर ही शिव ने उसे पहचाना। वह औरत सिर्फ इतना ही बोली, "क्यों, भैया ?" उसकी दंत-पंक्ति दीख पड़ी और दांतों के मिटते हुए रंग ने कहा कि किसी दिन ताम्बूल के कत्थे, कैथी के पान और मजीठ के रस में से चूकर हम यहां निखरे थे। आज तो इस नारी के जीवन की कोई अज्ञात वेदना हमें धीरे-धीरे खा गई है, परंतु जितना कुछ बचा है वह स्थायी है और दांतों के साथ ही जायगा।

"अरे !" शिव ने पहचानकर जो उद्‌गार निकाला उसमें एक साथ आदर और अवज्ञा, हर्ष और अप्रसन्नता दोनों का मिश्रण था।

"शारदू तुम !"

"ढूंढ़ निकाला न आखिर !" उस स्त्री ने अपनी साड़ी ठीक करते हुए मुस्कराकर कहा और शिव के चेहरे पर मुस्कराहट खिलने की प्रतीक्षा करने लगी; लेकिन प्रतीक्षा असफल होते देख खुद ही बोली, "मैं देश से चली आ रही हूं।"

"अकेली ?"

"हां, अकेली ही !" स्त्री के स्वर में अपनी परिस्थिति के बारे में स्पष्ट स्वीकृति थी। "आज सवेरे ही हमारा जहाज किनारे लगा। क्यों,

घर पर तो सब कुशल मे हैं न ? मुन्ना तो मजे में है ?"

बड़ी बहन के इस प्रश्न ने शिव को और भी घबराहट में डाल दिया। उत्तर देने के बदले उसने पूछा, "तुम जामनगर से आ रही हो ?"

"जामनगर से अपने घर माणावदर गई थी और वहीं से सीधी चली आ रही हूं। मन में आया कि चलो, भैया से मिलती ही आऊ।"

शारदू नाम की उस स्त्री ने इतने सहज भाव से कहा, मानो रतान-टो भी जामनगर और माणावदर के बीच का ही एक परिचित गाव है। वांगी (रगून) यदि सुन सके तो उसे कितना बुरा लगे। शिव-शंकर मन-ही-मन थोडा खीज उठा। जनम में कभी काठियावाड़ से बाहर पांव न निकालनेवाली गरीब अनाथ बहन शारदू की यह धृष्टता किसी भी भाई को खिजा सकती थी।

मन मे आया कि चलो, भैया से मिलती ही आऊ। वाह, क्या कहने हैं ! क्या तो गत बना रखी है ! सिर की साड़ी में पाच-सात पैबंद लगे हैं। बगल में गठरी दबी है। न आगे नाथ न पीछे पगहा। सास-ससुर हैं नहीं, पति था सो पहले ही छोड़कर भाग गया, जामनगर मे दिनछिपे बाद घर से बाहर नहीं निकलती, बरसों से जिसने अपने शहर के स्टेशन का मुहू नहीं देखा, वही शारदू यह रही है कि "चलो, भैया के पास होती आऊ !"

"तू तो काफी तगड़ा हो गया है रे ! पूरे सात साल बाद देख रही हूं। तूने मुझे पहचान लिया ? मैंने तो सोच रखा था कि पड़ोसर सवाल-जवाब करेगा और मैं तुझे खूब छकाऊंगी। यहा नौकरी है न ! अच्छा है भई, अच्छा है ! यहा तो सभी कुछ सुहावना है। रगून तो बहुत ही सुहावना है। हमारे शहर में कहीं चौड़े यहा के रास्ते हैं। और यहा का पानी तो इतना मीठा है, इतना मीठा कि क्या कहू ? पी-पीकर पेट फूल गया, पर प्यास न बुझी। यहा आते-आते तो फिर प्यास लग उठी।"

"अभी और मगवाये देता हू।" यह कहकर शिवशंकर ने पास ही खड़े कतहल-मगन मजदूर को बासे में से पानी लाने के लिए भेजा

"जाने दे। घर चलकर वहीं देखा जायगा। क्या बहुत दूर है घर ? कितनी दूर है ? तू अपना काम कर। मैं अकेली चली जाऊंगी। न हो तो किसीको मेरे साथ कर दे।"

"नहीं—नहीं, मैं साथ चलता हूं। अभी आया।" इतना कहकर शिवशंकर अंदर दफ्तर में चला गया।

फाटक से दफ्तर तक पहुंचते-पहुंचते शिव का माथा विचारों के बोझ से झुक-सा गया ! यह बहन कहां से आ धमकी ! इसे अपने यहां ले जाऊं या न ले जाऊं ? ले जाऊंगा तो क्या होगा ? बर्मी पत्नी क्या कहेगी ? उस बेचारी के तो बारह ही बज जायंगे। यह शारदू मेरी अकेली बहन है। विवाह कर इसे कोई सुख नहीं मिला। क्या यह मेरी बर्मी पत्नी को सहेज सकेगी ? इसका अपना जीवन तो बिगड़ा सो बिगड़ा ही, अब मेरा जीवन बिगाड़ने यहां क्यों आ धमकी। देश गये हुए मेरे संबंधियों ने जान-बूझकर मेरी गृहस्थी चौपट करने के इरादे से बहन को यहां रवाना किया दीखता है। बड़ी मुसीबतों के बाद तो घर बसा था। अब उसे उखाड़ फेंकने के लिए यह झंझा कहांसे आ निकली !

छुट्टी ले, रजिस्टर ठिकाने से रख, जब वह फिर फाटक पर आया तो वहां पांच-सात बर्मी मजदूरिनें शारदू को घेरे खड़ी थीं। भाषा की कठिनाई के कारण वे आपस में बातचीत तो कर नहीं सकती थीं, परंतु उनकी आंखें और उनकी मुस्कराहट एक-दूसरे के साथ परिचय करने में संलग्न थीं। भाषा की कठिनाई और वस्त्राभूषणों का भेद कुछ भी उनमें के सर्व-समान्य नारीत्व के मेल-मिलाप में बाधक नहीं हो रहा था। साड़ी के फटे आंचल से झांकते हुए शारदू के बाल उन बर्मी स्त्रियों से कह रहे थे कि कभी हम भी तुम्हारे ही बालों की तरह लंबे, घने, काले और लहराते हुए थे। कभी हम भी रात के एकांत में नवानगर की फुलवाड़ियों के फूलों से सजाये जाते थे। कभी हमारी भी जवानी थी, जवानी का उन्माद और आनंद था, आशा थी, हमारे सिर पर नीलांबर लहराता था और नागमती नदी का बहता पानी कितनी ही ग्रीष्म-कालीन संध्याओं को हमारी शैया बनाता था।

भाई के पीछे-पीछे जाती हुई बहन ने अपने दोनों हाथ जोड़कर उन

सबको नमस्कार किया और फटे आंचल से झांकते हुए वे सफेद-काले बाल उन वर्मी स्त्रियों के सरों से जड़ाऊ भी (कंघी) की मौन, निःशब्द याचना करते रहे।

"कितना हृष्ट-पुष्ट शरीर है!" मिल के अंदर जाती हुई वे मजदूरिनें आपस में बातें कर रही थीं। उनकी चर्चा का खास विषय तो वे उभरे और उछलते हुए दो आंचल थे।

"तू अचानक कैसे चली आई! न खबर, न कुछ!" बहन की ओर देखे बिना ही भाई ने रास्ते में उसे फटकारने के इरादे से कहा।

"अचानक आकर तुझे अचरज में डाल देना था।" दुःख, अपमान और अंत में पति के परित्याग से चोट खाने की अभ्यस्त बहन ने हँसी-सी करते हुए कहा।

"लेकिन हमारे यहां क्या हाल होंगे, बड़ी मुसीबतों के बाद तो हम ठीक-ठिकाने से लगे हैं...!" भिनभिनाकर रुक-रुककर बोल रहा था।

"पागल कहीं का!" बहन ने कहा, "कहां के हाल और कैसे हाल! यह तो संसार में चलता ही रहता है। तू इतना घबराता क्यों है? हमने किसीकी चोरी थोड़े ही की है?"

"लेकिन मुझे पहले से बतलाया होता तो मैं सब इंतजाम करके तब चिट्ठी लिखता। खर्च भेजता, यह क्या भिखमंगिन जैसी चली आई!"

भाई के इन शब्दों का भी बारहू पर कोई असर नहीं हुआ। उसकी दशा कहानी के उस ऊंट जैसी थी, जिसकी पीठ पर नक्कारे बज चुके थे और खेतवाला सिर्फ थाली बजाकर उसको आवाज से भगाना चाहता था।

घर पहुंचने पर भाई ने उससे कहा, "तू यहीं जरा बरामदे में बैठ, मैं भीतर जाकर उसे खबर कर आऊं।"

"वाह रे पगले! मैं भी कोई मेहमान या अपरिचित [redacted] जो अंदर नहीं जाऊंगी। चल मेरे साथ, नहीं तो तुझे माया कौन समझायेगा?"

कमरे में प्रवेश करते ही वह सीधी पलने के पास गई और झुककर सोये हुए बच्चे को देखा। देखकर बोली, "वाह, बिल्कुल तुझे ही पड़ा है!" इतना कहकर उसे प्यार कर रही थी कि भीतर के कमरे में से

च्चे की मां बाहर आई। उसने आज पहली बार ही बच्चे को प्यार करती हुई एक अपरिचित स्त्री को अपने घर में देखा। उस समय वह आपाद-मस्तक बर्मी वेश-भूषा में थी और फुलवाड़ी की तरह महक रही थी। उसकी गर्दन पर से लटककर पवा (दुपट्टे) के दोनों छोर उसकी जांघों पर झूल रहे थे।

"यह!" शारदू ने डरकर अपने भाई से पूछा।

"हां!" डर के मारे शिव के मुंह से सिर्फ एक ही अक्षर निकल सका।

"भाभी!" शारदू उस बर्मी औरत की तरफ मुड़कर क्षणभर के लिए रुकी रही, और फिर उसके चेहरे पर एक मुस्कराहट छा गई। चुपचाप खड़ी हुई वह बर्मी औरत भी मुस्करा दी। शारदू ने जरा समीप आकर भाई की पत्नी के कंधे पर हाथ रख दिया।

शारदू कद में ऊंची-पूरी थी। काठियावाड़ के उच्च वर्णों की स्त्रियों में आजकल ऐसा क़द दुर्लभ ही है। हृष्ट-पुष्ट शारदू का हाथ अपने सामने खड़ी कंधे तक पहुंचती उस दुबली-पतली बर्मी नारी की सारी पीठ पर फैल गया। फिर धीरे-धीरे वह हाथ उसके सिर पर, सिर की वेणी और वेणी के फूलों तक पहुंचा। उसने भाभी की वेणी के फूल ठीक किये और कहा, "कामिनी ही है यह तो कामरूप देश की!"

आगंतुक स्त्री की मधुर मुस्कान से बाग़-बाग़ होती हुई बर्मी स्त्री ने अपने पति शिवशंकर की ओर देखा। उसने हिंदी में परिचय दिया, "बहन है। देश से आई है।"

"आ-प ख-ब-र न-हीं दिया!" बर्मी स्त्री ने रुक-रुककर हिंदी में कहा और उसकी आंखें पति की ओर से ननद की ओर एक अर्द्ध-वृत्त बनाती हुई घूम गई।

"अरे वाह, हिंदी बोल रही हैं! हिंदुस्तानी मालूम पड़ती हैं। खास हिंदुस्तान की ही। नाक की यह नोक जरा उठी हुई होती तो···" और ननद की आंखों में आंसू भर आये।

पत्नी को उत्तर देते हुए शिवशंकर ने बर्मी भाषा में कहा, "इसने खुद मुझे ही अपने आने की खबर न दी। मुझे खेद है। बिना पूछे-ता

ही आ धमकी, इसलिए घर लाये बिना कोई चारा नहीं था। तुम्हें असुविधा तो होगी पर नाराज मत होना। दो-चार दिन में जैसे भी होगा, समझा-बुझाकर वापस भेज दूंगा।"

उत्तर में विस्मय से पत्नी के नेत्र फैल गये। उसके चेहरे पर की मुस्कराहट सख्त हो गई। शारदा सिर्फ यही देख सकी।

बर्मी स्त्री ने बर्मी भाषा में उत्तर देने के बदले हिंदी में ही कहा, "नाराज ! मैं क्यों नाराज होऊंगी। बहन घर आईं, उसमें नाराजगी कैसी ?"

शिवशंकर बर्मी भाषा में कुछ और सफ़ाई देने जा रहा था कि उसे टोककर वह बोली, "न-ही। हिं-दी बो-लि-ये।" और खिल-खिलाकर हँस पड़ी। फिर लजाकर अतिथि की ओर देखा और कहा, "बुरा मत मानना, बहन !"

इतना कहकर उसने शारदा को दोनों हाथ पकड़कर चटाई पर बैठा दिया और खुद उसके लिए दूध आदि लेने भीतर चली गई।

बर्मी वेश-भूषा में सजकर वह बाजार अपनी दुकान जा रही थी। वही कपड़े पहने हुए वह दूध ले आई और घुटनों के बल बैठकर उसे सनद के आगे रख दिया। फिर उसी बैठक से प्रेमपूर्वक पान लगाया। पलथी मारकर बैठी हुई शारदा का शरीर बहुत ही दर्शनीय लग रहा था। शारदा ने किसी देव-मंदिर की प्रतिमा के आगे झुके हुए भक्त के समान अपने सामने झुकी हुई इस स्त्री को अपने से भिन्न होते हुए भी अपने समान ही पाया। मनुष्य की भावनाएं सर्वत्र एक-सी होती हैं। अपने से भिन्न किसी दूसरे देश का निवासी जब अपने इतना निकट आ जाता है तो मन का आनंद निरे कुतूहल को प्लावित कर छलछला उठता है। तब क्षण-क्षण पर चिर नवीनता की सृष्टि होने लगती है, सत्य स्वप्न में परिणत हो जाता है और यह भय होने लगता है कि कहीं यह सब झूठ न हो जाय।

भाई ने समझाया, "यह बाजार जा रही है।"

"खुशी से जाय। थोड़ी देर बाद तुम भी चले जाना। इन्हें अपना काम कर आने दो।"

पत्नी के बाजार जाने का कारण शिवशंकर वतला न सका। वह झेंप गया। तब खुद पत्नी ने कहा, "मैं दूकान जाती थी। मेरी दूकान।"

"खुशी से जाओ। मैं बच्चे को रखूंगी।" शारदा ने पलने की ओर इशारा करते हुए उसे जाने की इजाजत दे दी। साथ ही एक विचार वर्फीली हवा के तेज झोंके की तरह उसके दिमाग में से आर-पार निकल गया कि यह इतनी सुंदरी भाभी बीच बाजार में बैठ दुकान पर सैकड़ों पुरुषों के साथ व्यापार करती है।

"नहीं। बाद में जाऊंगी। पहले आप नहा लीजिये।" और वह स्नान-घर में जा बालटी नल के नीचे रख टोंटी खोल आई। शारदा ने गठरी खोलकर अपने कपड़े निकाले, उससे पूर्व ही वह अपने पहनने की साड़ियों में से एक अच्छी-सी देखकर वहां रख आई। फिर जब शिव बाहर बरामदे में चला गया तो उसने हँसकर शारदा से कहा, "मेरे ब्लाउज तो तुम्हें काफी छोटे पड़ेंगे। बतलाओ, क्या किया जाय?"

"हाय-हाय! इसकी निगाह तो देखो! काफी पैनी हैं इसकी आंखें! मेरे शरीर की बनावट भी बारीकी से देख ली!" यों आश्चर्य का अनुभव करती हुई शारदू ने कमर से ऊपर के अपने शरीर के भाग को मन-ही-मन देखा और अपने-आपको कोसा, "इतना भुगतने के बाद भी यह काया पापिन घुली नहीं! दिनों-दिन फूलती ही गई! इस काया को छिपाते-छिपाते साड़ियां छोटी पड़ने लगीं! कुछ कम परेशान किया है इस शरीर ने मुझे! बार-बार लोगों की निगाहों में मुझे झूठ साबित किया। कोई इस बात को नहीं मानेगा कि मेरा मन मर गया है। अभी इसने भी तो वही इशारा किया। आकर तो यहां खड़ी भी नहीं हुई हूं और काया वैरिन ने बवाल खड़ा कर दिया!"

"पहले इसका शरीर पर लेप करना!" यह कहकर भावज ने स्नान-घर में रखा हुआ तमाखा का लेप बतलाया, "ठंडक पहुंचायेगा। मैं दूकान जाकर अभी आई।" फिर पति से पूछा, "क्या तुम थोड़ी देर तक रुक सकोगे?"

"हां-हां, तुम हो आओ। मैं भाई को रोकूंगी।" शारदू थोड़ी-सी देर के लिए ही सही, उसे दूर करना चाहती थी। उसके चले जाने पर

उसने भाई से कहा, "भैया, कपड़े उतार, तुझे नहाना है।"

शिवशंकर के कपड़े उतार लेने के बाद उसने उसे खबर सुनाई कि मां मर गई।

"कब ? कहां ?"

"माणावदर से मेरे घर जामनगर आई थी। वह यहां आनेवाली थी। उसे जबर्दस्त आघात लगा था।"

"कैसा आघात ?"

"किसीने कुछ उल्टी-सीधी खबर सुना दी होगी। एक तो तेरी चिट्ठी नहीं, दूसरे कहनेवालों ने जरूर नमक-मिर्च लगाकर बात कही होगी!"

"कैसी बात ?"

"तेरे ब्याह की। कहा होगा कि तू मास-मछली खाता है और जोरू तुझपर हुकूमत चलाती है और गुलामी कराती है, आदि-आदि। वह यहां आने के लिए रवाना हुई थी और जल्दी-से-जल्दी यहां पहुंचना चाहती थी, परंतु वहीं उसकी छाती फट गई। मरते समय उसने मुझसे वादा करवाया कि चाहे जो हो, परंतु एक बार रंगून जाकर भाई के सुख-दुःख का पता जरूर लगाना। मैंने किसी तरह उसकी अंतिम क्रिया की। माणावदर जाकर घर की सार-संभाल का प्रबंध किया और यहां के लिए चल दी। तुझे पत्र से सूचना देने का अवकाश ही नहीं था, भैया! मां के अंतिम दिन तो आ ही गये थे। अफसोस सिर्फ इस बात का है कि वह अपनी आंखों तेरी सुखी गृहस्थी नहीं देख पाई और तेरे दुःख की चिंता में ही चल बसी।"

थोड़ी ही देर में दोनों की आंखों से आंसू की झड़ी लग गई और एक अव्यक्त चीत्कार शिव की छाती में घुमड़ने लगा।

उठकर उसने स्नान किया। बहन भी नहा ली। फिर दोनों बैठकर बातें करने लगे। बहन ने भाई के घर में की हरएक चीज—बर्तन-भांडे, साज-सजावट, कपड़े-लत्ते—चारों ओर निगाह घुमा-घुमाकर अच्छी तरह से देखी-भाली और कहा, "मां को जो इस सच्ची बात का पता लग जाता तो वह बेचारी सुख से मरती। वह तो अक्सर कहा

करती थी कि जात-बिरादरी भाड़ में जाय, मेरा शिव कहीं भी शादी करले तो मैं भी गंगा नहाई। इस घंटे-आध-घंटे में ही मैंने इतना परख लिया है कि तेरी गृहस्थी सुखी है। भाभी सुंदर है और कमाऊ भी है।"

"नहीं तो मेरा तीस रुपये में पूरा ही कैसे पड़ सकता था ?" शिव ने कहा।

"बस तीस ही मिलते हैं ?"

"और नहीं तो क्या ? लेकिन वे तीस भी वह कभी नहीं मांगती। कहती है कि तुम खर्चो, खाओ और जरूरत हो तो देश भेज दो।"

"यानी घर का सारा खर्च वही चलाती है।"

"हां, वही चलाती है। एक मिनट भी खाली नहीं बैठती। खुद चीजें तैयार करती है। नौकरों से करवाती है और दुकान में रखकर इन्हें बेचती है।"

"फिर तू नौकरी क्यों करता है ? क्यों न उसीके धंधे में लग जाता है ?"

"वह नहीं चाहती कि मैं यहां के बर्मी पुरुषों की तरह परवश बनूं। उसका कहना है कि यदि मैं उसके काम-धंधे में लग गया तो मेरी हैसियत उसके एक नौकर के बराबर की हो जायगी। वह तो कहती है कि यदि मैं कुछ न करूं और आराम से बैठा रहूं तो भी वह कमा लेगी। लेकिन खाली दिमाग शैतान का कारखाना बन जाता है। फिर हमें बर्मी पुरुषों की समता तो करनी नहीं है।"

"बात तो सच है, भैया ! काफी समझदार मालूम पड़ती है।"

"कभी मैं योंही दुकान पर जा बैठता हूं तो उतनी देर खड़े-खड़े काम करती है ?"

"अच्छा भैया, एक बात पूछूं ? यहां की औरतें बीड़ी पीती हैं ?"

"हां छोटी-बड़ी सभी पीती हैं। लेकिन सच पूछा जाय तो उसे बीड़ी नहीं कह सकते। उसमें तंबाकू तो नाम को भी नहीं रहती। उसका मूल उद्देश्य तो मुख-शुद्धि रहा होगा। हमारे यहां की औरतें दांतों पर भांग घिसती हैं न, बस वैसा ही इसे भी समझ लो।"

यों मां के मरण-प्रसंग को वे कुछ टेढ़ी-तिरछी बातों की ओट छिपाने का प्रयत्न कर ही रहे थे कि भाभी लौट आई। उसने दोनों के रोकर लटके हुए चेहरे देखे। परंतु वह एकाएक कुछ भी नहीं बोली। अंदर जाकर उसने कपड़े बदले। बर्मी पोशाक के बदले गुजराती ढंग के कपड़े पहने। बिना मांग की वेणी खोलकर मांगवाली वेणी गूंथी। फिर बाहर आकर बैठी और पति से कहा, "तुम अब जा सकते हो।" उसके चले जाने के बाद शारदू से पूछा, "क्यों, रोये हैं ?"

"मां मर गई।" शारदा की आंखें फिर भर आईं।

बर्मी भाभी थोड़ी देर तक मृत्यु के उपलक्ष्य में मौन रहकर बोली, "यहां क्यों नहीं आई, मां ? बहुत बार उनसे कहा था। तुम्हारा तो मालूम भी नहीं था।"

यह जानकर कि भैया ने ही बात छिपा रखी है, शारदू अपने विषय में चुप रही।

"बौरी हो गई मां। क्या को उसकी जरूरत पड़ गई, फिर यहां कैसे रह सकती थी ?" भाभी दिलासा देने लगी।

नया जाग्रत हुआ कुतूहल शारदू के मन में हलचल मचा रहा था। मां की मृत्यु को वह शीघ्र ही भूल जाना चाहती थी। वह एकटक उस नई औरत की ओर देखती रही और रह-रहकर उसके मन में आ रहा था कि इसकी वेणी को छू लूं, पांव के तलुओं का स्पर्श करूं, चपटी नाक को खींचकर जरा बड़ी कर दूं।

"तुम्हारा नाम क्या ?" शारदू ने पूछा।

"रात को बताऊंगी।"

रात हो जाने पर वह शारदू का हाथ पकड़कर उसे बाहर खुले में ले गई और चांद दिखलाते हुए बोली, "जो इसका नाम वह मेरा नाम !

"क्या ?"

"मा-हू ला। हू ला कहते हैं चांद को और मा कहते हैं बहन को।"

"चंद्रा ? चंद्रिका ? चंदा ?"

"हां, अब अपना नाम बतलाइये।"

"शारदू ! जिस ऋतु में तुम चंद्रिका की तरह दिखलाई दो, उस ऋतुवाली मैं शारदू—बिना बादलों की स्वच्छ सुंदर···" शारदू साफ आकाश दिखलाने लगी।

"हां-हां-हां-हां।" मा-ह्‌ला खिलखिलाकर जोर से हँस पड़ी।

यों शारदू और मा-ह्‌ला एक-दूसरे को बहलाने और प्यार करने लगीं।

: २१ :

"यहां तुम्हारी काफी बिक्री होने की संभावना है। माल लेकर तुरंत आ जाओ। फिर अब तो रोटी की बनावट भी तुम्हारी धारणा से कहीं अधिक गोल हो चली है।"

शिव ने इस आशय का निमंत्रण रतुभाई को पीमना भेजा। रतुभाई ने स्नान-टो आकर मा-हूला को नमस्कार किया और कहा, "क्यों ग्रमा! काफी पैसे जमा कर लिये हैं क्या?"

अमा कहते हैं बड़ी बहन को।

"अरो ए··········! चुनो रो पाइसारो ना मसेवु (पैसे को इकट्ठा रखना तो हम लोग जानते ही नहीं हैं, बाबू)"

धर्मी जीवन के मूलमंत्र इस अति प्रचलित मधुर वाक्य के द्वारा मा-हूला ने अपने विवाह के एक मात्र गुजराती प्रशंसक रतुभाई का स्वागत किया। इस प्राथमिक शिष्टाचार के बाद रतुभाई की स्वर्णालंकार और नकली हीरों की पेटी खुली।

शारदा तो कभी से अंदर रसोईघर के एक कोने में जा छिपी थी। वहीं ननंद-भोजाई के बीच खींचा-तानी हो रही थी। भाभी हाथ पकड़कर उसे बाहर खींच लाने का व्यर्थ प्रयास कर रही थी। शारदा एक तो वैसे ही काठियावाडिन थी, दूसरे उसका शरीर आरंभ से ही हृष्ट-पुष्ट था, तीसरे स्नेहमयी भाभी ने खूब खिला-पिलाकर उसके स्वास्थ्य को और भी चमका दिया था।

"मैंने हाथ पकड़ लिया तो तुम्हारा मुंह शर्म से लाल क्यों हुआ जा रहा है, बहन?" भावज ननंद से हिंदी में कह रही थी।

"नहीं, हिंदी में नहीं। पहले इसी बात को वर्मी में कहो।" शारदू भावज को कर्ण-मधुर वर्मी भाषा में बोलने के लिए बाध्य कर रही थी।

"नहीं बोलूंगी।"

"तो मैं भी नहीं आऊंगी। कायदा आखिर कायदा है।"

शारदू ने आने के दूसरे दिन से ही यह नियम लागू कर दिया था कि भाभी को जो कुछ कहना हो वह पहले वर्मी में कहे और उसके बाद हिंदी में कहना चाहिए।

"हां, हमारी आपसी बातें सुनकर समझना चाहती हो, क्यों ?" भावज ने कहा था।

"अच्छा मन की बात जान गई ?" शारदू ने उत्तर दिया था।

इस नियम के द्वारा शारदू थोड़े ही दिनों में वर्मी भाषा समझने लग गई थी। इस श्रुति-मधुर वर्मी भाषा के आगे उसे अपनी मातृ-भाषा चूसी हुई गंडेरी जैसी नीरस लगती थी। वर्मी भाषा तो मानो रस-भरी गंडेरी ही थी।

"बाहर तो आओ ! फिर वर्मी भाषा के कई अनोखे प्रयोग सिखलाऊंगी ! एक-एक शब्द के आठ-आठ अर्थ होते हैं। इसीलिए कहती हूं कि बाहर आओ।"

"परंतु काम तो बतलाओ ?"

"तुम्हारा सिंगार करना है।"

"जारे जा। मीं (तू) नादान ! 'मीं धूर्त !' वह भावज को 'मीं' कहकर चिढ़ाने लगी।

"यह 'मीं' तो तुम्हारे मुंह से बहुत ही मधुर लगता है, बहन। पर यह तो बतलाओ कि तुम्हें अपना सिंगार करने में आपत्ति क्या है ?"

"मुझे सिंगार नहीं करना है। मेरा भी क्या सिंगार ?"

"क्यों ?"

"बूढ़ी तो हो गई हूं।"

"तुम और बूढ़ी ! ऐसे तो गाल फूल रहे हैं और कहती हो बूढ़ी हुई ! और बूढ़ी भी हुई तो क्या हो गया ? शृंगार क्या अकेली युवतियों का ही ठेका है !"

"देखनेवाले क्या कहेंगे !"

"कहते रहें !" शृंगार क्या किसी को दिखलाने के लिए किया जाता है ? होगा यह रिवाज तुम्हारे यहां। हमारे यहां तो हम सिर्फ अपने दिल को रिझाने के लिए शृंगार करती हैं। चलो, उठो। उठती हो या नहीं ?"

"परंतु ···!"

"परंतु-परंतु कुछ नहीं, उठो।"

"मैंने सभी बातें तो बतला दी हैं।"

"हां, और मैंने उन्हें सुन लिया है। उन सब बातों का यहां से संबंध ही क्या है ? वहां की बातें वहीं रहीं। हम लोग भूतकाल की बातें तो दूर, क्षण की भी बात को याद नहीं रखते। उठो, हमारे देश के गहने तो देखो !"

"नहीं-नहीं।"

"नहीं मानोगी तो मैं अपनी मां के घर रहने चली जाऊंगी और तुम्हें दूकान पर आने ही नहीं दूंगी।"

"दूकान पर आये बिना तो मैं रहूंगी नहीं !"

दूकान शारदा के लिए जबर्दस्त आकर्षण था। अपने देश में उसने कुछेक स्त्रियों को दूकानदारी करते हुए देखा था; परंतु एक साथ इतनी औरतों को दूकानदारी करते, बाजार का सारा कारोबार और व्यवसाय संभालते तो उसने यही पहली बार देखा था। और स्त्रियों की इज्जत करनेवाला पुरुष वर्ग भी उसने यहीं आकर देखा था। यहीं आकर उसे पता चला कि स्त्रियों का दूकानदारी करना न तो उनका दैन्य है और न हलकापन ही। त्रियाराज की कानों-सुनी बातों को यहां आकर उसने प्रत्यक्ष अपनी आंखों देखा। भाई ने भी उसे भाभी के व्यवसाय में मदद करने की अनुमति दे दी थी। फिर वर्मी स्त्रियां तो ठीक, पुरुष भी उसे सिर्फ शारदा कहने के पहले मा-शारदा कहकर पुकारते थे; न कोई मजाक करता और न कोई घूर-घूरकर देखता था। बिना काम कोई बात-चीत भी नहीं करता था। उसकी और वर्मी स्त्रियों की शरीर-रचना में फ़र्क स्पष्ट रूप से और एकदम दीख पड़नेवाला होते

हुए भी, उसकी कोई हँसी नहीं उड़ाता था। इसके सिवा भाभी ने तो अपने व्यवसाय में उसकी थोड़ी-सी हिस्सेदारी भी कर दी थी! ऐसी दूकान पर जाना भला वह कभी छोड़ सकती थी! फिर तो जीवन ही बेमजा हो जाता!

वह चट खड़ी हो गई और पट बाहर निकल आई। मा-ह्‌ला ने रतु-भाई से कहा, "मुझे इनके लिए डलिया भरकर गहने चाहिए। हैं तुम्हारे पास इनके नाप की चीजें या नई बनवानी होंगी ?"

क्षणभर के लिए तो रतुभाई विस्मय-विमुग्ध रह गया। उसे लगा कि कहीं यह अपनी किसी बर्मी सखी को तो गुजराती पोशाक पहनाकर नहीं बुला लाई है!

लेकिन नहीं, यह असंभव है। सामनेवाली का तो शरीर ही पुकार-पुकारकर कह रहा था कि वह यहां की, इस देश की नहीं है। उसने चौंककर निगाहें शिव की ओर फेरीं।

शिव ने कहा, "मेरी बहन है, यहां आये कुछ ही महीने हुए हैं। नाम है शारदा। ननद को बड़े भाग्य से भाभी मिली है और भाभी को बड़े भाग्य से ननद मिली है। इधर श्रीमतीजी को दूकान में थोड़ा-सा मुनाफा हो गया। वे पैसे खटक रहे हैं। अब शारदा को गहनों से मढ़ने की रट लगा रखी है।"

रतुभाई ने शारदू के हाथ देखे। हाथों में एक-एक चूड़ी के सिवा और कुछ भी नहीं था। एक चूड़ी के सिवा दूसरा कुछ भी पहने जाने का चिह्न तक न था।

विधवा होगी!

परंतु नहीं। यदि विधवा होती तो हाथ में एक-एक चूड़ी भी न होती और न माथे पर बिंदी ही होती।

जो हो, मुझे दूसरों से क्या!

लेकिन जब-जब किसीका अंतःकरण यह कहता है कि "मुझे दूसरों से क्या" तब-तब वह झूठ ही कहता है। "मुझे दूसरों से क्या" वाली पराई चिंता न जाने कब और कैसे कहनेवाले की अपनी चिंता बन बैठती है।

शिव की पत्नी ने उस दिन सचमुच ही शारदू को गहनों से मढ दिया। वह अकसर रतुभाई को अपने परिचित धर्मी परिवारों में माल बेचने के लिए बुलाती थी। उस समय रतुभाई का वाक्चातुर्य देखते ही बनता था। उसकी बातों की सफाई से प्रभावित होकर पांचसौ का माल खरीदनेवाला खुशी-खुशी दो हजार का माल खरीद लेता था। परंतु इस बार तो उसकी जबान न जाने क्यों ठिठुर कर रह गई थी! शिव की पत्नी ने कई मर्तबा मजाक भी उड़ाया कि क्या इस बार माल बेचने की कला पीमना में ही भूल आये हो?

"घर के आदमी के सामने बेचने की कला की जरूरत ही नहीं पड़ती।" लेकिन रतुभाई ने सत्य नहीं कहा था। उसकी कला प्रोठों तक आकर खो जाती थी। उसका मन शारदू के मन का रहस्य बूझने में तल्लीन हो रहा था। यह स्वस्थ सबल स्त्री इतनी निरानंद क्यों है? चेहरे पर वेदना की रेखाएं तो नहीं दीख पड़तीं। स्फटिक की तरह स्वच्छ और निर्मल है इस चेहरे का लावण्य। यहां वेदना की काली छाया हो ही कैसे सकती है? ऐसा मालूम पड़ता है कि मानो इसके साथ किसी तरह की ज्यादती की गई हो।

जब वह और शिव बाहर निकले तो शिव ने बिना पूछे ही बहन का पूर्व-इतिहास बतलाया।

"तेरहवें वर्ष में विवाह हुआ सोलहवें वर्ष में पति जामनगर की एक धनिक विधवा को लेकर कहीं चला गया। आज पूरे दस वर्ष हो गये। उसका कुछ भी समाचार नहीं। एक पत्र तक नहीं। सुनते हैं, दोनों हिंदुस्तान से बाहर कहीं विदेश चले गये हैं। शारदू को उसके ससुर ने थोड़ा-बहुत पढ़ा-लिखाकर शिक्षिका बना दिया। उसके बाद ससुर भी मर गया। घर में तो पहले से ही कुछ नहीं था। अंत में घर भी सगे-संबंधियों ने हथिया लिया। वह नौकरी करती थी, परंतु अपने शरीर के कारण उसे सर्वत्र लोक-निंदा सुननी पड़ी। यह भी उसका दुर्भाग्य ही समझो कि इतनी विपत्तियों के बाद भी शरीर सूखकर कांटा नहीं होता था। न उसके मन पर वेदना की गहरी छाप ही उभरती थी। लोग-बाग रह-रहकर ताज्जुब करने लगे कि इतनी तकलीफों के बाद भी इसके

शरीर का मुटापा कम क्यों नहीं हुआ ? इसके अफसरों को भी यही फिक्र हुई। नतीजा यह हुआ कि नौकरी से हाथ धोना पड़ा। खूब व्रत-उपवास किये, भूखी रही। अपनी जान में कोई प्रयत्न बाकी न छोड़ा, परंतु मुटापा दूर न होना था, न हुआ। पानी पीती थी तो वह भी खून बन जाता था। लोक-निंदा का कोई असर ही नहीं होता था। आखिर हम भी घबरा गये और शंका-कुशंका करने लगे। मां ने बुलाना छोड़ दिया। दो-तीन रुपये महीने में किसी तरह गुजर-बसर कर लेती थी। उतनी रकम मैं यहां से भेज दिया करता था। मेरे विवाह की उड़ती खबरें सुन मां इसको साथ लेकर यहां आ रही थी, परंतु वह तो जामनगर में इसके घर ही मर गई और यह अकेली यहां आ पहुंची।"

"ननद-भौजाई की पटरी तो खूब बैठी है ?"

"अरे, क्या पूछते हो ! दोनों एक-दूसरी के लिए पागल हो रही हैं। शारदू ने अपने जीवन की हर छोटी-से-छोटी बात तक अपनी भाभी को कह सुनाई और अब भावज पर एक ही धुन सवार है।"

"वह क्या ?"

"शारदू का पुनर्विवाह करने की।"

यह सुनते ही रतुभाई के हृदय में एक धक्का-सा लगा—हर्ष का या विषाद का, इसे तो स्वयं वह भी निश्चित नहीं कह सकता। शिवशंकर ने बात पूरी की, "मेरे साथ लड़-झगड़कर वह मुझे रंगून के एक बंगाली वकील के पास खींच ले गई। वहां हिंदू-लॉ के पोथे उलट-पलटकर इस बात का निश्चय करवाया कि कानून की रू से शारदू का पुनर्विवाह हो सकता है या नहीं। पूरी जानकारी और अंतिम निर्णय के लिए कलकत्ते के एक सुप्रसिद्ध वकील की सलाह भी इस वकील की मार्फत मंगवाई है। कानून की रू से शारदू का पुनर्विवाह हो सकता है, क्योंकि पति को छोड़कर गये सात वर्ष से ज्यादा समय हुआ। अब उसने जिद पकड़ ली है कि शारदू के लिए कहीं से कोई भारतीय पति ढूंढ़ निकालो।"

रतुभाई कुछ कह न सका। शिव ने उसे आश्चर्यान्वित करनेवाला दूसरा प्रश्न पूछा "कोई ऐसा मिल भी जायगा ?"

"जोखम उठानेवाला चाहिए। अंतिम निर्णय कुछ भी हो, परंतु यदि पहलेवाला पति लौट आये और झूठे-सच्चे सबूत खड़े कर अदालत की शरण ले तो शारदू के साथ विवाह करनेवाले को उसके लिए तैयार रहना चाहिए।"

"यहां तो ऐसा कौन मिलेगा ?" शिव ने कहा।

दोनों घर लौट आये और रत्नुभाई ने जाने के लिए अपना बैग उठाया।

"क्यों ?" मा-हूला ने पूछा।

"रात को रंगून जाकर रहूंगा।"

"यहां क्यों नहीं ?"

"वहां काम है।"

यह झूठ था।

उसकी आंखें शारदू को ढूंढ रही थीं। आदमी जिस तरह तसवीर को चौखटे में मढ़कर देखना चाहता है, उसी तरह रत्नुभाई शारदू को अब एक बार सुने हुए इतिहास के चौखटे में रखकर देखना चाहता था। पहले जिस शारदू को देखा है वह तो इतिहास-विहीन एक मुखाकृतिभर थी। अब देखना था जीवन-कथा की नक्काशी के बीच जड़ी हुई तसवीर को। आकृति में तो कोई परिवर्तन नहीं होता; निरीक्षक की दृष्टि में ही विविध रूपों की सृष्टि होती है। वैसे आकृति अपने-आपमें कुछ भी नहीं है। जो कुछ है वह निरी वास्तविकता है और वास्तविकता हड्डियों के ढांचे के समान होती है। वास्तविकता के उस ढांचे पर जीवन के अनुभव, जीवन के संस्कार और देखनेवाले की दृष्टि रुधिर-मांस का आवरण चढ़ाती है।

शारदू भीतर बैठी भाई के बच्चे को थपकियां दे रही थी। वह बाहर आ न सकी। परन्तु उसके शरीर की विद्युत्धारा का संचार उस दीवार में भी हो रहा था, जिससे टिककर वह बैठी हुई थी, और प्रतिक्षण उसे यह डर लग रहा था कि कहीं दीवार पिघल न जाय।

: २२ :

रतुभाई ने रात रंगून में बिताई और सवेरे जब वह सोकर उठा तो सारे रंगून शहर की जनता में हलचल मची हुई थी। इरावदी के लहराते हुए पानी की तरह प्रत्येक के हृदय में नई आशाएं और नई आकांक्षाएं लहरा रही थीं। बर्मा का प्रधान मंत्री यू-सा इंगलैंड जा रहा था। ब्रिटिश सरकार ने उसे निमंत्रण देकर बुलाया था। बर्मी जनता पूर्ण आजादी के सपने देखने लगी। बस उसके वहां पहुंचनेभर की देर है। यू-सा ने चर्चिल को रिझाने के लिए बर्मा की खास भेंट, वहां की खुशबूदार तम्बाकू के चुरट, अपने साथ लिये थे। खुद जाकर स्वराज्य का वरदान लानेवाले उस प्रतिनिधि की विदा के उपलक्ष में जहां उसके समर्थकों ने तिजाम-प्वे का आयोजन किया था, वहीं उसके विरोधियों ने 'ऊ-सो प्यां-त्वा !' (यू-सा वापस हो !) का नारा भी बुलंद किया था। आखिर यू-सा का हवाई जहाज गरुड़-पक्षी की तरह पांखें फड़फड़ाता हुआ इंगलैंड की ओर उड़ चला।

पीमना में रोज रतुभाई का पहला दैनिक कार्यक्रम नीम्या के घर जाकर उसके बच्चे को खिलाने का था। दो दिन से वह 'कांऊले' (बच्चा) 'अको' की प्रतीक्षा कर रहा था। 'अको' कहां गया है ? अको गया है यांगों। अको तेरे लिए फुंगी-पोशाक (पीत चीवर) लेता आयेगा। तेरे लिए भीख मांगने के भिक्षापात्र लेता आयेगा। मेरा कांऊले बड़े ठाठ-बाट से फुंगी बनेगा। फुंगी आयंगे और उसे चांऊ में ले जायंगे। मैं और अको तुझे चांऊ में छोड़ने आयेंगे। वहां तेरे कान भी छेदेंगे। फिर तुझे चांऊ में ही छोड़कर लौट आयेंगे। दूसरे दिन सवेरे फुंगी भिक्षा मांगने

निकलेंगे। सबसे आगे एक बड़े फुंगी, उनके पीछे उनसे छोटा फुंगी, उसके पीछे उससे छोटा फुंगी, इस तरह एक के पीछे एक-दूसरे छोटे-छोटे, चौदह बरस के, बारह बरस के, नौ बरस के, छह बरस के और उन सब के बाद चार बरस का मेरा नन्हा फुंगी, हरएक के हाथ में एक-एक भिक्षा-पात्र, मेरे नन्हें फुंगी के हाथ में भी एक छोटा-सा भिक्षापात्र। पीले-पीले चीवरों की कतार और काले-काले भिक्षापात्रों की कतार। घुटी हुई चिकनी, चमकती खोपड़ियों की कतार, बड़े पावों की और बच्चे पावों की कतार, एक लंबी कतार चली आयेगी। रास्ते में घर-घर से स्त्रियां पुकारेंगी। प्रार्थना करेंगी कि फया! ठहरो, फया! दीन नारी के चावल की भेंट लेने ठहरो फया! मैं भी अपनी गली के मुंह पर आ खड़ी हूंगी। झुककर पुकारूंगी 'च्यावा फया!' मां-मां कहता दौड़ा मत आना मेरे 'काऊने'! पागल की तरह मेरी एंजी मत पकड़ लेना। आठ दिन तो फुंगी रहना, जोगी रहना। गोडमा फया (गौतम प्रभु) का राहुल भी तेरे जैसा ही था। तेरे जैसा ही दिखनौटा था। तेरे जैसा ही नन्हा-मुन्ना था। तेरी मां जैसी ही उसकी मां यशोधरा भी उसे प्यारी थी। मां ने उसे 'गोडमा' को अर्पण कर दिया था। वह तो दौड़कर मां के पास नहीं आया था।

आठ दिन का यह अनोखा और अनमोल बालयोग मेरे लाल, सबके लिए प्रभु ने सिरजा है। तू भिक्षापात्र आगे कर देना और मैं तुझे चावल अर्पण करूंगी। तुझे दुनिया देखने को मिलेगी। इतना नन्हा योगी तो दुनियावालों ने देखा भी नहीं होगा। जनम-जनम के तेरे बंधन कट जायंगे। तेरे पिता के पाप कट जायंगे। आठ दिन बाद लौट आना।

चाऊं में अकेला डरेगा तो नहीं? रात को मां के लिए रोयेगा तो नहीं? फुंगी तुझे नहीं मारेंगे। लाल आंख नहीं दिखायेंगे। कोई कड़ी बात कहे तो गोडमा की मूर्ति के पास आकर फरियाद करना। फया तेरी फरियाद सुनेंगे।

—और देखना एक बात कहती हूं। किसीसे कहना मत! मन की मन में रखना। चुपके से गोडमा फया से पूछ लेना कि बाबूजी ...

ग्रौर मामाजी कहां चले गये हैं। ग्रौर यह भी पूछना कि पिता से फिर कभी मुलाकात होगी या नहीं ?

'ग्रको' की प्रतीक्षा करते हुए बालक को रात के समय सुलाने से पहले नीम्या उसकी दीक्षा के दिव्य स्वप्न देखती रही। ग्राठ-पंद्रह दिन की यह बाल-दीक्षा प्रत्येक बर्मी बालक के लिए उसके जीवन का ग्रति महत्त्वपूर्ण उत्सव समझा जाता है। कांक्ले की मां इसी उत्सव के गीत गा रही थी।[1]

बर्मा में यह दीक्षा ग्रौर कर्ण-छेदन दोनों साथ-ही-साथ होते हैं। मरणोत्सव से भी बढ़ी-चढ़ी इस बाल-दीक्षा के लिए ग्रपने पुत्र को झट-झट बड़ा देखने की मधुर ग्रभिलाषा प्रत्येक बर्मी मां के मन में रहती है। नीम्या तो सपने ही देखा करती थी। रोज सवेरे उठकर ध्यान से देखती कि बच्चा बड़ा हुग्रा है या नहीं। कम उम्र ही सही, जरा होशियार हो जाय, जरा बोलने-चालने ग्रौर ग्रपने कपड़े-लत्ते संभालने लग जाय तो फिर दीक्षा-विधि संपन्न कर दे।

पति को गुम हुए काफी समय बीत गया था। ग्राधी रात को 'ए नीम्या...' की परिचित पुकार की निष्फल प्रतीक्षा करना भी ग्रब उसने छोड़ दिया था। ग्रब तो उसे झूठमूठ को भी भ्रम नहीं होता। पड़ोसियों तक ने उसके लुप्त दाम्पत्य जीवन की चर्चा करना छोड़ दिया था। यही क्यों, पुलिस ने भी ग्रनावश्यक समझकर उसके घर की रात की चौकी हटा ली थी। जीवन-सरिता के समतल प्रवाह में हठात् पत्थर गिरने से जो बुलबुले उठ ग्राये थे वे कभी के थम गये थे ग्रौर उसका प्रवाह फिर से शांत ग्रौर समतल हो गया था। जीवन का पुराना रंगमंच खाली हो

---

[1] ठेठ गौतम बुद्ध के जमाने से यह प्रथा चली ग्रा रही थी। ग्रपने सामने भिक्षा-पात्र लेकर खड़े हुए बुद्ध को यशोधरा ने ग्रपना पुत्र ही ग्रर्पण कर दिया था। परंतु बुद्ध उसे भिक्षु नहीं बनाना चाहते थे, इसलिए कुछ दिनों तक बाल-भिक्षु बनाये रखकर राहुल को उन्होंने लौटा दिया था।

गया था। पुराने अभिनेता विदा ले चुके थे। वह नये अभिनेता को नये पाठ पढ़ाकर तैयार कर रही थी।

अर्द्धजाग्रत सुषुप्त नीम्या को लगा कि जैसे कोई नीचे से उसे पुकार रहा है 'मा-नीम्या ए···!'

'नीम्या ए···!' का पुराना परिचित स्वर नहीं। यह तो स्पष्ट सुनाई पड़ रहा है 'मा···नीम्या ए···!'

भ्रम होगा। इस समय कौन आता है ?

दबी हुई आवाज फिर से सुनाई दी : 'मा-नीम्या ए···!'

डरते-डरते बाहर आकर उसने नीचे झांका। अंधेरे में कोई खड़ा था।

"कौन है ?"

"मा-नीम्या ! जल्दी दरवाजा खोल।"

किसकी आवाज है ? वर्षों से अपरिचित यह स्वर किसका है ?

अंदर आ, टाड पर से कुछ लंबा-लंबा-सा उतार, उसे मजबूती से एक हाथ मे पकड़ नीम्या नीचे उतरी। वह धा थी।

दूसरे हाथ से दरवाजा खोला, "कौन है ?"

"मैं मांऊ।"

"अको !" नीम्या ने भाई को पहचाना और अंदर आने दिया। इस समय वह फुंगी के वेश मे नही, फौजी वर्दी में था।

"अको !" नीम्या का गला भर आया।

"सिर्फ इतना ही कहने आया हूं, नीम्या, कि माऊ-न्यू सही सलामत है। परंतु जीतेजी शायद ही तेरी उससे भेंट हो सके। ऐसा लगता है कि तेरे पास तो उसका शव ही आयगा। नीम्या, तू यहां से कहीं दूर चली जाना। म्यो (शहर) मे मत रहना। दूर के किसी टो-मां (जगली गाव) में चली जाना। बर्तन-भाडे साथ ले जाना।

"क्यों, अको ?"

"यह मत पूछ, नीम्या। यहां महा-प्रलय होनेवाला है।"

"अको, यह क्या कह रहा है तू ?"

"सच ही कह रहा हूं, नीम्या ! भविष्यवाणी कर रहा हू मैं !

प्रलय होने वाला है। आसमान से आग बरसेगी। आकाश क्रुद्ध होकर हुंकार करेगा। बम-गोलों की झड़ी लग जायगी। धरती फट पड़ेगी। धरती और आकाश दोनों मिलकर अपनी संहार-लीला शुरू करेंगे। माता-पिता अपने बच्चों को खा जायंगे। आग की लपटें सौ-सौ कोस तक दिखलाई पड़ेंगी।"

"कौन ? कौन आयेगा, अको, और आग लगायेगा ?"

"हम। खुद हमीं आग लगायेंगे। मैं महा-प्रलय का संदेश-वाहक बनकर आया हूं, नीम्या। समय रहते सावधान हो जाना। अपना और अपनों का बचाव करना। परंतु खबरदार, किसीसे कहना मत कि मैं आया था। कहने के साथ ही तू और तेरा कांळले धरती पर लोटते नजर आओगे। फया की वाणी है, इसका उल्लंघन मत करना। जाता हूं। नीम्या अल्वीं प्युवा (विदा दे, नीम्या)।"

उसके बाद, सवेरा होने से पूर्व, आसमानी रंग का एक हवाई-जहाज बिना किसी आवाज के दूर के एक खेत में से उड़ा और स्याम की राजधानी बेंकाक की ओर चला गया। उसका चालक और कोई नहीं मांऊ खुद था और उसके अंदर का मुसाफिर मांऊ-पू था। साले-बहनोई दोनों जापानी एजेंट बनकर हवाई-सेना में भर्ती हो गये थे।

फिर नीम्या सो न सकी। महा-प्रलय के आगमन का जो संदेश उसने सुना था उसने उसकी नींद खत्म कर दी। कैसी प्रलय ? कैसा संहार ? क्यों और किसलिए और किसकी ओर से ? उसने किसीका क्या बिगाड़ा है ? बर्मावासियों ने किसीका क्या अपराध किया है ? इरावदी ने कब किसीको धान-पानी देने से इन्कार किया है ? यहां न तो कोई किसीको निकालता है और न कोई किसीको खा ही जाता है।

नीम्या जानती थी कि यूरोप में जर्मनी लड़ रहा है। वह दुनिया को हड़पना चाहता है। लेकिन यह जानकारी धुंधली-सी थी। उस युद्ध का बर्मा से तो कोई संबंध नहीं था। यहां तो सबके-सब अपना काम--

धंधा करते थे, मशीनें चलाते और [illegible] यहां तिन्जाम-ख्वे बंद नहीं हुए थे। [illegible] नहीं करवाई थी। कातिकी चुनो के [illegible] का किसीने आदेश नहीं दिया था। [illegible]

चीन और जापान लड़ रहे थे—[illegible] से दूर, बहुत दूर थी। यहां तो [illegible] शॉप चला रहे थे, बनियों से [illegible] सौदे कर रहे थे। जापानी [illegible] धंधा कर अपना पेट भर रहे थे।

यहां चीनी-जापानी कहां एक [illegible]

और स्वराज्य का [illegible] है। फिर यहा क्यों मान के [illegible]

डाक्टर नौतम के बच्चे को [illegible] हो और कब आकर मैं उसके [illegible]

सवेरे रतुभाई आया। [illegible] का प्रयत्न किया। रात की [illegible] थी। 'मको' डरा गया था। [illegible] वह। मुह से निकलते ही [illegible] न सकी। हाय, कहीं [illegible] हो जायगी।

रतुभाई को उसकी [illegible] का विवरण दे चुकने के बाद [illegible] मानो उसे कोई [illegible] गया। अंत में नीम्या ने बात [illegible]।

"मको! अपने देश जाने का तुम्हारा मन कभी भी क्यों नहीं होता?"

"लेकिन देश में जाकर शादी-वादी क्यों नहीं करते ?"

"क्यों अमा ! यह डर तो नहीं है कि मैं यहां के युवकों के हिस्से में से एक-आध वर्मी औरत उड़ा लूंगा ?"

"हां, यह डर तो है ही। यहां किसीसे शादी मत करना, अको। अपना देश आखिर अपना ही देश होता है। उसकी समानता कोई नहीं कर सकता।"

"परंतु देश में मेरा है ही कौन ? भाई, वहन, मां, बाप, स्त्री कोई भी तो नहीं है। 'जोरू न जांता, अल्लामियां से नाता।' मेरा सच्चा स्वदेश तो यहीं है।"

"तो फिर ऐसा करो। यहां से किसी गांव में रहने के लिए चला जाय। मैं, तुम, डाक्टर का परिवार और मेरी मां, बस इतने आदमी चलें।"

"गांव में जाकर खायंगे क्या ? वहां धंधा क्या है ? परंतु यह तो वतला, मा-नीम्या, कि तू आज इतनी विह्वल क्यों हो रही है ?"

"और तो कोई वात नहीं, मेरा दिल गांव में जाकर रहने का हो रहा है। 'काऊंले' भी तो यहां अच्छा नहीं रहता।"

"अच्छा तो चलेंगे। तर्वीजो करके चलेंगे। इस वीच लेना-देना भी निपटा लेंगे। सोना-चांदी को ठिकाने से रखना भी एक वड़ा मुश्किल काम है। मैं समेटना शुरू करूं।"

"लेकिन हम अकेले नहीं जायंगे, डाक्टर-दंपति को भी साथ ले चलेंगे।"

"आज का तेरा स्वर ही कुछ अजीव-सा लग रहा है, वहन ! अच्छा, तुझे किसीकी याद आ रही है !"

वह खुद भी चिंता-ग्रस्त होकर चला गया। इन खुशमिजाज वर्मियों की तिलमात्र उदासी भी उसके लिए असह्य हो जाती थी। अगली-पिछली सात-सात पीढ़ियों की फिक्र करनेवाले, ढेर-से परिग्रह के वीच फंसे हुए, पैसे की हाय-हाय में घानी के वैल हो रहे और रात में भी सिरहाने और छाती पर सट्टे के टेलीफोन लेकर सोनेवाले इन गुजरातियों का तो खुशमिजाजी से पैदाइशी वैर है। यदि एक भी चिंता न रही तो

ये आनंदोत्सव में से ही कोई-न-कोई चिंता खड़ी कर लेंगे। परंतु इन वर्मी लोगों के फूल से इनके प्राणों पर आत्मपीड़न की चिंता का यह भीषण बोझ कहां से आ बैठा? नृत्य-मूर्ति नीम्या किन विचार-भार से आक्रांत होने लगी? रतुभाई को संपूर्ण सृष्टि ही घूमती हुई-सी लग रही थी।

क्योंकि नीम्या उदास थी।

: २३ :

"आओ भाई, आओ ! आजकल तो तुम्हारे भाव खूब बढ़ गये हैं।" डॉक्टर नौतम ने रतुभाई का स्वागत करते हुए कहा, "मनसुखलाल और उनकी पत्नी मान्त्वे दो बार चक्कर लगा गये हैं। बोलो, अब क्या विचार है ?"

"किस बात का ?"

"उनके दामाद बनने का।"

"ऐसा लगता है कि मैं दिनों-दिन यहांवालों के लिए डस्टबीन[1] बनता जा रहा हूं।" रतुभाई ने हँसकर उत्तर दिया।

तुरंत हेमकुंवर ने उसे आड़े हाथों लिया, "वाह, ऐसे ही बड़े हिमायती हो नारी-जाति के ! मन से तो उसे कूड़ा ही समझते हो ! क्यों ?"

"कूड़ा है ? मनसुखलाल की बर्मी लड़की कूड़ा है ? क्या कहते हो रतुभाई ? बड़ी मस्त लड़की है।" इतना इतना कहकर डॉक्टर ने तुरंत पत्नी की ओर देखा और मजाक में कहा, "अर र र। भूल ही गया मैं तो। क्षमा करना, भई। पराई औरत की प्रशंसा अपनी औरत की उपस्थिति में कभी नहीं करनी चाहिए।"

"और बड़ी-सी जायदाद है।" हेमकुंवर ने रतुभाई को लालच दिया।

"हां, यह एक आकर्षण अवश्य है।" रतुभाई ने व्यंग किया।

"आकर्षण की बात भले ही छोड़ दी जाय;" हेमकुंवर ने समझाने की नीयत से कहा, "लेकिन यह समझ लो कि एक महान् कर्तव्य तुम्हारे

---

[1] कूड़ा डालने की पेटी

आगे है। मनसुखलाल तो छाती ठोककर कहते हैं कि कोई गुजराती तैयार नहीं होता तो जाय जहन्नुम में, बर्मी युवकों की कोई कमी नहीं है। मैं उन्हींमें से किसी एक के साथ शादी कर दूंगा। लेकिन बात इतनी आसान नहीं है। मां ही नहीं चाहती कि उसकी बेटी बर्मी समाज में दी जाय। बाईस वर्ष का उसका विवाहित जीवन और इक्कीस वर्ष की यह लड़की। लालन-पालन सब कुछ गुजराती ढंग से हुआ। मांस-मछली छूना तो दूर, देख भी नहीं सकती। शाकाहारी बर्मी का मिलना तो अलग, पढ़ा-लिखा भी मिलेगा या नहीं, इसमें अभी पूरा संदेह है। संस्कार ही दूसरे हो गये। बर्मी रीति-रिवाजों में पली हुई लड़की मालदार होकर भी गरीब के साथ और पढ़ी-लिखी होकर भी बेपढ़े के साथ शादी कर लेती है। परंतु इसके लिए तो यह सभव नहीं है।"

"यह भी क्या अजीब बात है," रतुभाई ने हेमकुंवर की ओर से डॉक्टर की ओर देखते हुए कहा, "कि आदमी जहां युवक हुआ और दो पैसे कमाने लगा कि वह शादी का उम्मीदवार समझा जाने लगता है।"

"बुरा ही क्या है ?" डॉक्टर नौतम ने जवाब दिया, "प्रत्येक 'नार्मल' आदमी से यही तो अपेक्षा की जाती है।"

"नार्मल किसे कहेंगे ?"

"सामान्यतः सशक्त और मर्द, मितभोगी, मन से प्रफुल्लित रहने-वाला और मस्तिष्क से विचारवान।"

"इतना सब कुछ होते हुए भी क्या कोई ऐसी बाधाएं नहीं हो सकती जो 'नार्मल' आदमी को भी विवाह के अयोग्य ठहराती हों ?"

"जैसे ?"

कोई प्रबल आघात या सामाजिक अन्याय और अत्याचार की कोई भीषण घटना।"

"तुम्हारा आशय भारत की पराधीनता से तो नहीं है ? महात्माजी आंदोलन शुरू करनेवाले हैं, उसका खयाल तो बाधक नहीं हो रहा है।"

"जी नहीं, ये महान् घटनाएं तो किसीका मरना-जीना या शादी-विवाह करना रोकती नहीं। विवाह तो संगीनों की छाया में भी हो

सकता है और पीढ़ियों के पीछे भी बच्चे पैदा होते हैं।"

"फिर क्या इस गुलाम देश में गुलामों की वृद्धि करने का डर है?"

"वह भी नहीं। मेरा तो उलटा यह विश्वास है कि गुलामों की वृद्धि के साथ-साथ आजादी के सिपाहियों की भी वृद्धि होती है।"

"यह भी नहीं, वह भी नहीं, तो आखिर ऐसी कौन-सी 'एबनॉर्मल सिच्युएशन'[1] है तुम्हारे सामने?"

"लो भाई, इसे पढ़ लो।" यह कहकर रतुभाई ने अपनी जेब से डाक का एक लिफाफा निकालकर डॉक्टर को दिया। पत्र काफी लंबा था और उसपर पता रतुभाई का ही था।

पत्र पढ़ते समय डॉक्टर के चेहरे के भावों में परिवर्तन होते रहे। कभी माथे पर सिलवटें पड़ जाती थीं और कभी भौंहें सिकुड़ जाती थीं।

पत्र समाप्त करने के बाद उसने हेमकुंवर की ओर संकेत करके रतुभाई से पूछा, "यह भी पढ़ सकती है इसे?"

"अवश्य।"

हेमकुंवर ने भी उस पत्र को पढ़ा। लिखा था—

पूजनीय चाचाजी,

मात्र इतना लिखती हूं कि मेरी मां मुझे जेतपुर से लेकर यहां आई है और अपने धर्मगुरु से मुझे दीक्षा दिलवाई है। अपना अगला भव सुधारने की जो सलाह दी जाती है वह मुझसे सुनी नहीं जाती। जबर्दस्ती शास्त्राभ्यास करवाया जा रहा है। मेरे मन की बात तो तुम जानते ही हो। पिताजी मरते समय मुझे तुम्हारे हाथों सौंप गये थे। तुम्हारी अनुपस्थिति में, यह जानते-बूझते हुए भी कि सामनेवाले आदमी को क्षय है, अम्मां ने मुझे दुर्भाग्य के गड्ढे में ढकेल दिया। मैं कुल जमा पंद्रह दिन सधवा रही और अब मार-मारकर हकीम बनाई जा रही हूं। यहां शास्त्रों की कैद और साधु-संतों का पहरा लगा है। चाचा, तुम तो वहां आनंद से रहते होगे। कभी मेरी भी याद करना और यह भी याद करना कि मेरे पिता ने, तुम्हारे सगे बड़े भाई ने, मरते समय मेरा हाथ तुम्हें सौंपा था।

---

१. असामान्य स्थिति

—अभागी तारा।

पत्र पढ लेने के बाद उसकी तह करने में हेमकुंवर को काफी परिश्रम करना पड़ा। उसके बाद पति-पत्नी एक-दूसरे की ओर यंत्र-चालित पुतलों की तरह देखते रहे। रतुभाई अपनी डायरी में व्यवसाय-संबंधी कुछ बातें लिख रहा था। लिखना समाप्त कर उसने डायरी जेब में और कलम बाहर की जेब में यथास्थान रक्खा। फिर उठते हुए बोला, "अच्छा, तो अब मैं चल दिया।"

हेमकुंवर ने पत्र उसकी ओर बढ़ाया और उसने उसे बिना किसी तरह की उत्तेजना के पूर्ण शांति और स्वाभाविकता से लेकर फिर से जेब में संभालकर रख लिया और रवाना हो गया।

: २४ :

सारे देश में बिछी हुई शतमुखी मां इरावदी की असंख्य धाराओं में कार्तिकी पूर्णिमा के दिन शत-सहस्र कलात्मक दीप तैराये गये थे, मानो मृत्युलोक के किसी महान् कलाकार ने संसार-सरिता में तैरनेवाले कोटि-कोटि जीवन-दीपों का रूपक ही रच दिया हो। नीचे अगाध गहराई वाला, अनंत वर्तुलों और भंवरोंवाला स्वच्छ और गंदला संसार था। उसके ऊपर कल-कल निनाद करती हुई पानी की सतह थी। इसी ऊपरी सतह पर दीपक नाचते-तैरते थे। सतह का विस्तार अंतहीन था और दीपक नन्हें-नन्हें थे। सतह का स्वभाव बुझाने का और दीपकों का स्वभाव जलते रहने का था। फिर भी सतह विश्वासघातिनी नहीं थी। जब दीपक उसके हृदय पर क्रीड़ा करने आये तो सतह ने मृदंग बजाया और दीपकों ने नृत्य किया। सतह के अंतर को दीपकों ने अपने प्रकाश से जगमगा दिया।

दीपकों की परिपूर्णता इसीमें थी कि वे नाचकर, तैरकर और प्रकाश देकर सतह की गोद में लय हो जायं। अमरता की उन्हें कोई आकांक्षा नहीं थी। उन्हें तैरानेवालों को भी उनके चिरायु होने की कोई चाह नहीं थी। यह सुंदरता अपनी क्षण-भंगुरता से परिचित थी। लेकिन उनकी वही क्षण-भंगुरता अपने अंदर कितना यौवन, कितनी आयुष्य, कितनी अमरता छिपाये हुए थी। एकाध क्षण आनंद से खेलकर और अखिल विश्व की सुंदरता में सौंदर्य के एकाध कण की वृद्धि कर खुशी-खुशी लय हो जाना हजार-हजार अमरता से भी अधिक मनोहर था।

नीम्या भी नदी की ओर चली। उसने एक हाथ में उसने बच्चे की अंगुली पकड़ रखी थी और दूसरे हाथ में अपने हाथों बनाया नारंगी रंग का चित्र-विचित्र फानूस लिये हुए थी। जल मे नाचती और जगमगाती हुई दीप-मालिका को देख नीम्या का प्राणदीप भी थिरकने लगा। उसके पाव की चप्पलें छम-छम करने और कमर बल खाने लगी। कागज के फानूस को बाईं हथेली पर पूजा के थाल की तरह ऊपर उठाकर नीम्या ने नाचना शुरू किया। कब बच्चे का हाथ उसके हाथ से छूट गया, इस बात की उसे सुध ही न रही।

सैकड़ों लोग उसे घेरकर उसके साथ चले जा रहे थे। वे सब शांत थे। कोलाहल का कहीं नाम भी नहीं था। सिर्फ उनके पाव की फना[1] फटाफट करती हुई ताल देती जाती थी। सबके-सब नीम्या के मौन, नि.शब्द नृत्य को देखते हुए सरिता-तट की ओर चले जा रहे थे, और नीम्या तल्लीन होकर नाच रही थी। उसके मन यह अंतिम तथीजो था। पता नहीं फिर कब नूतन वर्ष आयेगा, कब नया धान पकेगा? कौन जाने कब शरद्-लक्ष्मी का वरदान पाकर धान की फसल खेतों में लहलहायेगी। पता नहीं, नये धान्य का नृत्य, नूतन जल का नृत्य, बाकी बची हुई शरद् का भी नृत्य फिर कभी देखने को मिलेगा भी या नहीं।

शरद्कालीन शुभ्र मेघ-खंडों का समूह अनंत आकाश के आंगन में ऐसा मालूम पड़ रहा था, मानो नये चावल का ढेर लगा हो।

नदी-तट पर पहुंचकर वह रुकी। श्रद्धा-पूर्वक उसने अपने फानूस को नदी मे सिराया और जब उठी तो उसकी छाती धक् रह गई। बगल में देखा तो बच्चा गुम था।

"कहां गया, बापरे, मेरा काऊने !"

"ले बहन, यह है तेरा बच्चा !" कहते हुए भीड़ मे के एक आदमी ने बालक का हाथ उसके हाथ मे थमा दिया। वह आरंभ से ही नीम्या

---

[1] चप्पल

का नृत्य देखता आ रहा था और जब बच्चा उसके हाथ से छूट गया तो उसने खुद उसे संभाल लिया था।

नीम्या लज्जित हो गई और यह ख़याल आते ही कांप उठी कि "यदि किसी फुंगी ने मुझे उस दशा में देख लिया होता, तो क्या होता !"

ठीक उसी समय पूर्णिमा की चांदनी में मांडले की ओर की उत्तर दिशा इस तरह प्रकाशित हो उठी, मानो वहां किसीने भयंकर आग सुलगा दी हो ! सारा क्षितिज धांय-धांय कर सुलग उठा !

भाई की भविष्यवाणी सच निकली। इस बात का प्रथम परिचय मिल गया था। सवेरे सुना कि जापानी हवाई जहाज़ों ने बर्मा रोड पर ज़बर्दस्त गोलाबारी की है। जापान ने चीन को शस्त्रास्त्र पहुंचाये जानेवाले एकमात्र मार्ग बर्मा-रोड को तहस-नहस करना शुरू कर दिया था। बर्मा का सिर्फ़ यही दोष था कि चीन और हिंदुस्तान को जोड़नेवाली यह पुरातन सड़क उसकी धरती पर से होकर जाती थी। ब्रिटेन ने इस सड़क की रक्षा नहीं की; क्योंकि जापान अभी तक ब्रिटेन का मित्र-देश था, अमेरिका अबतक जापान के हाथ गोलाबारूद बनाने का कच्चा माल बेच रहा था।

\+ × ×

जिस समय नीम्या नये धान्य को नृत्यांजलि समर्पित कर रही थी, शामजी सेठ नये वर्ष का नया धान खरीद रहे थे। बीस बरस बर्मा में रहकर भी उन्होंने बर्मी भाषा सही-सही सीखने की कभी परवा नहीं की थी। इस समय उनकी मोटी आवाज़ सारे दफ़्तर में गूंज रही थी, "परंतु चनारों धलाव सोरे-सभा क्यों चुमे ! (हम गीला धान क्यों लें ?)" धान बेचने को आये हुए एक बर्मी के साथ वे स्वयं ही सिर खपा रहे थे।

"क्यों सेठ, अब भी धान क्यों खरीद रहे हो ?" शांतिदास सेठ ने कहा।

"क्या हुआ कि धान न खरीदा जाय ? यू-सा को तो अच्छा तमाचा पड़ ही गया है ! चर्चिल ने चुरट के बदले उसे लात मारकर निकाल दिया। अब यू-सा तो क्या, उसका बाप भी हमें यहां से नहीं निकाल सकता।"

"परंतु जापान-अमेरिका के बीच जो बातचीत चल रही है, उसका अंतिम परिणाम भी तो देख लेते !"

"जापान तो पड़ा दम तोड़ रहा है। उसके पास सोना और हवाई जहाज है ही कहां ? मैं तो यहां के हर जापानी से मिला हूं। जापान से आनेवाले अपने देश-बंधुओं से भी मिला हूं। हरेक का यही कहना है कि जापान टिक नहीं सकता। जापान के पास न तो हवाई जहाज हैं, न सोना और न अनाज ही। फिर क्या खाकर जापान लड़ेगा ? भूलकर भी आशा मत करना। यहां लड़ाई फटकेगी भी नहीं। रही बर्मा-रोड ! इस मामले में तो अंग्रेजों की नीयत ही खराब है। चीन को मदद देना नहीं चाहते। जापान के साथ हिस्सा बांटकर लेने का इरादा होगा, इसलिए चुपके से कह दिया होगा कि बरसाओ बम और उड़ाओ परखचे इस बर्मा रोड के। मैं खुद बंद करके दुनिया में अपनी बदनामी करवाऊं, इसकी अपेक्षा तुम्हीं इस काम को पूरा कर दो। हमें तो आम खाने से काम है, पेड़ गिनने से नहीं। बात दर असल में यह है, सेठ, समझे ? हमें भी तो आम खाने से काम है, पेड़ गिनने से नहीं।"

कातिक महीने की धान की नई फसल के ढेरों के बीच में बैठे हुए धामजी सेठ ने लड़ाई की चालों का इस तरह स्पष्टीकरण किया। उन्हें हमेशा मतलब आम खाने से था, पेड़ गिनने से नहीं।

एक तरह से उनका कहना सच था। बर्मा में अनेक जापानी व्यावसायिक दफ्तर खोले बैठे थे। बहुत कम लोग यह जानते थे कि इन दफ्तरों में काहे का व्यापार होता है। काठ के उल्लू जापानी हमेशा अपने देश की दयनीय दशा का रोना रोया करते और चीनियों को देखकर तो इतना आदर-स्नेह प्रकट करते, झुक-झुककर नमस्कार करते थे, मानो मां-जाये सगे भाई हों।

सबकी आंखें अमेरिका पर टिकी हुई थीं। जापानी राजदूत वाशिंगटन में व्हाइट हाउस की सीढ़ियां गिन रहा था। रोज अखबारों में पढ़ा जाता था कि वह प्रेसिडेंट रूजवेल्ट की कितनी अनुनय-विनय करता है और रूजवेल्ट-चर्चिल उसे कितना दबा रहे हैं। ऐसे समाचार

पढ़कर बर्मा की पंचमेल दुनिया इन काठ के उल्लू जापानियों की ओर ताकती थी। जापानी और भी अधिक मूर्खता और अज्ञान का प्रदर्शन करते थे।

रतुभाई ने शहर से दसेक मील दूर एक गांव में नीम्या और उसके बच्चे के लिए घर ले लिया था। वह रोज वहां अपनी मोटर में आता-जाता था। अब रतुभाई ने मोटर खरीद ली थी। बर्मी परिवारों में खरीदे जानेवाले स्वर्णाभरणों और रत्नाभूषणों के साथ रतुभाई की साख जम गई थी। ठेठ शान स्टेट के राजवंशीय घरों तक में उसके नाम का सिक्का जमा हुआ था। माल लेकर घर-घर घूमनेवाले इस युवक के वहां पहुंचते ही अंतःपुर के द्वार इसके लिए अविलंब खुल जाते थे। इससे पूर्व अनेक युवा गुजराती जहां डर का कारण बने थे, वहां उस डर को रतुभाई ने अमां (बहन) शब्द के प्रयोग से सदा के लिए निर्मूल कर दिया था।

मोटर-गाड़ी, रत्नाभूषण, शान राज्य के अंतःपुर की 'बहनों' का आदर-मान और नीम्या—कांछ्ले की सार-संभाल के बीच देश के एक गांव में कष्ट पाती हुई भतीजी तारा की सूरत हमेशा रतुभाई की आंखों के आगे नाचा करती थी। तारा का उद्धार करने के लिए उसे जाना ही होगा। जबतक वह तारा को उस दल-दल से निकाल उसके मनचाहे युवक के हवाले नहीं कर देता, उसे अपना घर बसाने का कोई भी अधिकार नहीं। रंगून से हिंदुस्तान जाने के लिए जहाजों का तांता लग रहा था, परंतु वह कांछ्ले के मुख की ओर देख अपना जाना अगले दिन पर टाल देता था। नीम्या भी उसे कुछ दिन और रुक जाने के लिए कहती और फिर मांक की उस रात की भविष्यवाणी याद कर तुरंत चले जाने का आग्रह करती थी। रतुभाई ने अभीतक उसे अपनी सगी भतीजी तारा के बारे में कुछ भी नहीं बतलाया था। रतुभाई का खयाल था कि वह दो महीने में तो सारा काम-काज निपटाकर लौट आयेगा, बहुत करके तो तारा को भी यहीं लेता आयेगा। परंतु नीम्या को दीर्घ-कालीन वियोग की आशंका थी। उसका खयाल था कि कम-से-कम छः

महीने तो लग ही जायंगे। और इन छः महीनों में तो महानाश का दैत्य अपनी संहार-लीला समाप्त कर लौट चुका होगा। सभी काम-काज पूर्ववत् चलने लग जायंगे। फिर सोने-हीरे की दुकान लगायेंगे। कांछले भी बड़ा हो जायगा, खूनी पति माऊ-पू माफी मांगकर लौट आयेगा। प्रको भी आ जायगा और वे लोग रतुभाई के उपकार की बात सुनकर कितने खुश होंगे। ओह, कितने खुश होंगे!

: २५ :

स्टीमर छूटने के आधे घंटे पूर्व ही बिना बादल के गाज गिरी। लोगों ने चौंककर यह समाचार सुना—

—जापान ने प्रशांत महासागर में अमेरिका के पर्ल हार्बर पर अचानक आक्रमण कर वहां के अमरीका नौसेना के पूरे जहाजी बेड़े को नष्ट कर दिया।

और रतुभाई का जाना खटाई में पड़ गया।

रोज-रोज रेडियो चिल्लाते थे कि जापान बढ़ा चला आ रहा है। प्रशांत महासागर के द्वीपों को लुका-छिपी के खेल की तरह सरलतापूर्वक हस्तगत करता हुआ जापान बढ़ा चला आ रहा है।

दुनियावाले अभी आंखें ही मल रहे थे कि जापान ने मलाया के समुद्री विस्तार में दो सर्वश्रेष्ठ अंग्रेजी रण-पोतों को जल समाधि दी और मलाया में ऊपर की ओर से खुश्की के रास्ते अपनी फौजें उतारीं।

हवा के झपट्टे में जिस तरह फटी किताब के पन्ने उड़कर तितर-बितर होने लगते हैं उसी तरह जापानी झंझावात के आगे इंग्लैंड-अमेरिका का पैसिफिक प्रदेश उड़ चला।

बम के धड़ाके की तरह लोगों ने सुना—सिंगापुर गया। शेषनाग के फन पर से गोरे प्रभुत्व की कील उखड़ गई।

अरे, बर्मा में बसे हुए वे काठ के उल्लू जापानी कहां गुम हो गये? धरती में तो नहीं समा गये?

आग की लपटें आ रही हैं, आंधी के साथ मलाया के ऊपर होती हुई आग की लपटें आ रही हैं। स्याम से टेढ़ी-तिरछी जीभ लपलपाती हुई

आग की लपटें बढ़ी चली आ रही हैं।

भागो ! भागो ! भागो ! लेना-देना बराबर करो; पास में जो माल है; उसे पानी के मोल बेचो; नक्द रकम हिंदुस्तान ले चलो, बाल-बच्चों को जहाज पर चढ़ाओ; जलता घर कृष्णार्पण करो। भागो ! यह अपना देश नहीं है। यह तो पराई भूमि है। इसे इसके भाग्य के भरोसे छोड़ो, और खुद यहां से भाग चलो; भागो ! भागो !

लोग पागल होकर पानी के मोल अपना माल-मता बेच रहे थे। ऐसा लगता था, मानो बाजार में बेचनेवालों का तूफान ही आ गया है। रतुभाई भी दीवाने की तरह रगून, मांडले और शान राज्यों को एक कर रहा था। कारण यह था कि उसकी दुकान में पराई पूंजी लगी हुई थी। सोना चाची और नीम्या की खुद की पूंजी तो थी ही, परंतु वे दोनों मां-बेटी दूसरे बहुत-से बर्मी परिवारों से भी अमानत ले आई थीं। यह सब रतुभाई के गले की फांस हो रहा था। उनमें से तो अपनी रकम वसूल करने अभीतक कोई नहीं आया था, पर वसूली की सख्ती मचा रखी थी शांतिदास सेठ के मुनीम-जैसे लोगों ने, जो दिन में पचास चक्कर लगा जाते थे।

तेईस दिसंबर दिन के ग्यारह बजे।

रगूनवालों की परोसी हुई थालियां परोसी ही रह गईं। आसमानी रंग के 'मइइय' जापानी हवाई जहाजों ने पहली उड़ान भरी और पर्चे गिराये। "हट जाना, शहर से बीस-बीस मील दूर हट जाना।"

इसके बाद तो रोज सुबह जापानी जहाज उगते सूरज की और विदा लेती रात की, बमगोलों की अग्नि-शिखा से आरती उतारने लगे, उनकी अगवानी में संहार-कलश सजाने लगे।

"खबरदार ! माल न हटाया जाय !" सरकारी रक्षकों ने जनता के भंडारों और गोदामों पर सरकारी ताले लगा दिये।

"कहां है स्टीमर ? अरे, जल्दी भारत जानेवाली अगन-बोटें बुलाओ तो भागा जाय यहां से !" भारतवासी चीख-पुकार मचाने लगे।

अगन-बोटों में जगह कम पड़ने लगी। सबसे पहले गोरों को जान बचाने की फिक्र पड़ी थी।

तो हवाई जहाज लाओ ! मुंहमांगी कीमत देंगे। शांतिदास सेठ के बच्चों को तौलकर उनके बराबर सोना देंगे। हवाई जहाज़ ही लाओ।

"हवाई जहाज की कमी है, सेठ, बारी आने दो।"

पहली बार शांतिदास सेठ को इस बात का अहसास हुआ कि सोना भी काम बनाने में सहायक नहीं होता !

जनवरी का महीना। मोलमीन का ध्वंस ! दक्षिणी बर्मा में धान के व्यवसाय के प्रधान केंद्र मोलमीन का ध्वंस ! गुजराती सौदागरों द्वारा निर्मित, परम ऐश्वर्यवान, इरावती तट पर पढाऊ-पुष्प की भांति सुशोभित मोलमीन का नामो-निशान मिट गया !

वहांसे भागनेवाले, जिन्हें स्टीमर नहीं मिला था, पैदल ही हजारों की तादाद में पीमना और मांडले की ओर चले आ रहे थे।

रतुभाई, डाक्टर गौतम और हेमकुंवर ने गुजरातियों को झकझोरा और गुजराती लोगों ने उन विपदा के मारों को आश्रय, भोजन और आगे जाने के लिए खर्च देने की व्यवस्था की। गुजराती, पंजाबी, बंगाली, युक्तप्रांतीय चेट्टियार हिंदू और मुसलमान सब-के-सब भारतवासी पड़ाव-पड़ाव पर भोजन पाते और खर्चा-पानी लेते उत्तर की ओर बढ़े जा रहे थे। पश्चिम की ओर का जलमार्ग और नभमार्ग तो रुक ही गया था। रंगून के बंदर पर किलबिलाते हुए वे लोग मानव-प्राणी थे या कीड़े-मकोड़े ?—दूर से देखने पर इसका निर्णय करना कठिन था।

इसके बाद रंगून-मांडले रेलवेलाइन पर, जो अभी तक चालू थी, एक बहुत ही भीषण दृश्य दिखाई दिया।

किसीका हाथ टूटा हुआ है तो कोई लंगड़ी-लूली हो रही है; किसीके नाक-कान कटे हुए हैं—ऐसी ये कौन औरतें आ रही हैं ?

वे थीं मोलमीन से भागी हुई चीनी स्त्रियां। उनकी शारीरिक क्षति तो खुलेआम दिखलाई पड़ती थी, परंतु अदृश्य थीं उनकी अगोचर आत्म-जगत की क्षतियां !

उनका सर्वस्व लूटा गया था। उनके साथ बलात्कार किये गये थे !

रास्ते मे दुकानें, होटलें, स्त्रियां, जो कुछ पड़ता, लूट लिया जाता था। दिनों बाद तो मौका मिला था!

× × ×

"हठ छोड़ दो डॉक्टर, तुम्हे और हेमकुंवर बहन को यहां से चले ही जाना चाहिए।"

"तुम सबको छोड़कर?"

"हां छोड़कर! अपने लिए नही, हेमकुंवर बहन के लिए। चीनी स्त्रियों पर जो गुजरी है, वह मैंने आंखों देखा है। उसकी कल्पना-मात्र से मैं कांप उठता हूं। हेमकुंवर बहन के पूरे दिन चल रहे हैं। कुछ हुआ तो हम इन्हे कहां ले जायंगे?"

"परंतु तुम?"

"हमें तो मौत भी नही छुयेगी। जैसे-तैसे पहुंच जायंगे। लो ये दो टिकट। सिंधिया स्टीम नेविगेशन का जहाज परसों ही जा रहा है। चलो, रवाना होओ। सामान मैं संभालता हूं।"

दूसरे दिन सवेरे डॉक्टर नौतम की मोटर उनके परिवार और रतुभाई को लेकर रंगून की ओर चल पडी।

उसी दिन सवेरे जापानी बमों ने रंगून पर गोलाबारी की थी। रंगून की धरती उधड गई थी। शहर के बाजार पट गये थे और स्यार-कुत्ते दुकानदारी कर रहे थे। मानव-शवों पर होकर मोटर चली जा रही थी। रतुभाई मोटर चला रहा था। हेमकुंवर दोनो हाथों से आंखो को मूंदे अंदर बैठी थी। बल्ला डॉक्टर नौतम की गोद में सो रहा था। उस बेचारे शिशु का उस ध्वंस-लीला से मतलब ही क्या था!

"डॉक्टर, शांतिदास सेठ की दुकान की हालत तो देखो!" रतुभाई ने आंख के इशारे से बतलाते हुए कहा। मरे हुए कौवे के पर जैसे एक-एक करके बिखर गये हो, ऐसी हो रही थी उस दुकान की हालत। बर्मी और जेरबादी मिलकर उसे लूट रहे थे। पास ही फौज खड़ी थी; परंतु उसका लक्ष्य कहीं और था।

मरा हुआ कौवा! इन बिखरे हुए परो मे से एकाध छोटा-सा पर

नीम्या की वह अंगूठी होगी ! वे कान के झुमके होंगे ! और ! कितनों का क्या-क्या होगा !

मोटर आगे बढ़ी। बंदर थोड़ी ही दूर रह गया था। स्टीमर के इंजन की आवाज सुनाई दे रही थी। धुआं उगलती हुई उसकी चिमनी दिखाई देने लगी थी। परंतु चारों ओर मील-मील तक कहीं सुई रखने को भी जगह न थी। लोग कीड़ों की तरह बिलबिला रहे थे। पुरुषों की आवाजें, स्त्रियों की चीत्कारें, बच्चों का रुदन, सामान की धर-पटक, धकमधक्का, लड़ाई-झगड़ा, दंगा-फिसाद, गाली-गलौज, पुलिस के हंटर की आवाजें, रिक्शा खींचनेवालों के हांफने की ध्वनियां, डामर की सड़क पर घोड़ों का फिसलते हुए गिरना।

इन सबके बीच मोटर का सीधा रास्ता खो गया था।

: २६ :

"पहुंच गये, डॉक्टर !" जहाज का दूसरी बार का भोंपू बजने के साथ ही रतुभाई ने कहा। बचा हुआ रास्ता पार करने के लिए उसने जैसे ही मोटर का गीयर बदला, एक सार्जेंट ने रास्ता रोककर हुक्म दिया, "गेट डाउन यु ऑल वेग एंड वेगेज (अपने सामान-सहित [illegible] उतर पड़ो)।"

"क्यों ?"

"सरकार को मोटर की जरूरत है।"

"लेकिन हमें इस स्टीमर पर जो पहुंचना है।"

"एक भी शब्द बोले बिना उतर [illegible]

एकाएक किसी दैत्य के भीषण स्वर की तरह हवाई हमले की सूचना का भोंपू बज उठा—"भागो ! दुश्मन के हवाई जहाज आ रहे हैं।"

भोंपू की आवाज के साथ ही जहाज की सीढ़ी खींच ली गई और जहाज ने चुपचाप भागना शुरू कर दिया। कप्तान को यह देखने की फुर्सत न थी कि कौन चढ़ा है और कौन किनारे पर रह गया है। तीन हजार मुसाफिरों पर बम गिरने से जो प्रलय-कांड मचता, वह कल्पनातीत था।

सीढ़ी खिंच जाने से जहाज का किनारे के साथ का स्थूल संबंध तो समाप्त हो गया, परंतु अब एक दूसरे ही प्रकार का संबंध कायम हुआ था। डेक पर से हजारों कंठों का सम्मिलित स्वर आ रहा था—"ओ-ओ-ओ-ओ···"

किनारे पर से सैकड़ों कंठ प्रत्युत्तर देते हुए हाहाकार कर रहे थे—"हो-हो-हो-हो···!"

पति सवार हो गये थे और पत्नियां किनारे पर रह गईं थीं। मां-बाप सामान रखने ऊपर चढ़े तो वहीं रह गये और नन्हें निराश्रित बालक किनारे पर खड़े आंसू ढारते रह गये।

दोनों ओर से एक विवश दारुण हाहाकार सुनाई पड़ रहा था और समुद्र उसे सह न सकने के कारण किनारे पर सिर पटक रहा था।

जिसे सुनकर सुननेवालों के रोंगटे खड़े हो जाते हैं, उसे अपनी आंखों देखने और खुद भुगतनेवालों की क्या दशा हुई होगी !

संसार के सारे इतिहास में विदा की ऐसी दारुण घटना हुई होगी कहीं ? हां, हुई है—जब यूरोप के गोरे मालिक अफ्रीका के हब्शी गुलामों को पकड़कर ले जाते थे, जब मां एक के हिस्से पड़ती थी और बेटा किसी और के, जब पति-पत्नी दो जुदे-जुदे मालिकों द्वारा खरीदे जाकर हंटर से अपनी पीठ उधड़वाते सदा के लिए विलग हो जाते थे, तो उस विदा-वेला में अफ्रीका के समुद्र-तट पर ऐसा ही हाहाकार उठता रहा होगा !

"ऊपर आओ, डेडी ! दौड़े आओ !" मोटर में से दौड़कर स्टीमर पर जा चढ़ी वह अंग्रेज युवती डेकपर से अपने पिता को बुलाने का व्यर्थ प्रयत्न कर रही थी। उसका पिता और साथ के दो बच्चे जेटी पर

खड़े जहाज और धरती के बीच निरंतर चौड़ी होती जाती इरावदी की खाड़ी का गंदला पानी देख रहे थे। जब उन्हें लेकर डॉक्टर नौतम की वही मोटर वापस हुई तो डॉक्टर का परिवार अभी तक फुटपाथ पर ही गुमसुम खड़ा था। रतुभाई सवारी पाने की दौड़-धूप कर रहा था।

"अरे, अपनी मोटर!" मोटर को देखते ही बल्ला बोल उठा। उसके इन शब्दों ने मोटर में बैठे हुए अंग्रेज को चौंका दिया। उसने एक निगाह मोटर-मालिक के परिवार की ओर डाली और अपने बच्चों से कहा, "अपनी ही तरह स्टीमर पर जानेवालों की मोटर हमने छीन ली, उसीकी यह सजा ईश्वर ने हमें दी है!"

"अब स्टीमर नहीं मिलेगा, क्यों डेडी?" सात वर्ष की उम्र के बालक ने पिता से पूछा।

"कोई संभावना नहीं। किसी दूसरे ही रास्ते से जाना पड़ेगा। बहन अकेली चली गई। उसका सामान भी यहीं पड़ा रह गया।"

चौदह वर्ष की पुत्री ने पूछा, "जिनकी कार हमने लेली वह भारतीय स्त्री फुटपाथ पर बैठ क्यों गई थी, डेडी?"

"वह गर्भवती है!"

"हे प्रभु!"

जहाज न पा सकनेवाले ये गोरे और हिंदुस्तानी, दोनों-के-दोनों पीमना जाने के लिए फिर से रेलवे स्टेशन पर मिले। वापस गये बिना कोई चारा नहीं था। किसी भी घड़ी रंगून के बंदर पर गोलाबारी हो सकती थी!

स्टेशन पर खड़े-खड़े ही उन्होंने बम के धड़ाके सुने। बंदर के परखचे उड़ाये जा रहे थे।

शिवशंकर पर क्या बीती होगी? रतुभाई चिंतित होने लगा। सनान-टो तो औद्योगिक क्षेत्र है। जापान ने जरूर उसपर बमबारी की होगी। सनान-टो जाने की संभावना भी बंद हो गई थी। कबसे शिव को लिख रखा था कि सबको लेकर पीमना चला आये।

रतुभाई परिचित गुजरातियों को ढूंढता हुआ ट्रेन की राह देख रहा था। इसी बीच उस अंग्रेज पिता और उसके बच्चों के साथ नौतम

और हेमकुंवर की भेंट हो गई। अंग्रेज झेंप गया। उसके नेत्रों ने मौन रूप से क्षमा-याचना की। जब नौतम को यह मालूम हुआ कि जहाज में सवार होनेवाली उसकी पुत्री थी तो उसने कहा, "एक बार मैंने आपकी लड़की को डांट दिया था। वह चंदा जमा करने आई थी।"

"आपने उचित ही किया था।" अंग्रेज के इस उत्तर से डॉक्टर को आश्चर्य हुआ, "मैं दूसरों के ऐसे पुनरुद्धार के सख्त खिलाफ हूं। मेरी लड़की को न जाने कहां से यह धुन सवार हो गई!"

"आप क्या करते हैं?"

"फयु में मेरा बड़ा भारी कारोबार है।"

ये बातें चल ही रही थीं कि ट्रेन यार्ड में आ पहुंची। मुसाफिर दौड़ पड़े। तीनों दर्जों में से एक में भी खड़े रहने तक को जगह नहीं थी। और हालत यह थी कि इसके बाद कोई दूसरी ट्रेन मिलेगी या नहीं, उसके बारे में बतलाना मुश्किल था।

वह अंग्रेज मिलिट्री का एक बड़ा भारी ठेकेदार था। उसके लिए फौजी डब्बे में जगह की गई। वह शरमाता हुआ डॉक्टर नौतम के पास आया और उनसे अपने साथ बैठने का आग्रह किया।

"मेरे एक साथी और हैं। आपको असुविधा होगी।"

"कुछ नहीं। वह कहां हैं?"

"वह आ रहे हैं। लेकिन अरे, वह तो अपने साथ तीन और व्यक्ति को और ला रहे हैं। अब आप हमारी चिंता छोड़िये।"

"कोई फिक्र नहीं। मैं सबके लिए जगह का प्रबंध कर सकूं चलिये।" अंग्रेज नौतम को अपनी ओर से हुए नुकसान की भर करने का निश्चय कर चुका था।

रतुभाई के साथ शिवशंकर का परिवार था। नौतम शिव रतुभाई की मार्फत पहचानता था। परंतु उसकी पत्नी के सा पहली ही मुलाकात थी। उसकी बहन शारदू तो हेमकुंवर के लि बड़ा सहारा हो गई। उसने आते ही प्रसूती की बातें छेड़ दीं, सुनकर हेमकुंवर बड़ी आश्वस्त हुई।

जब उनकी ट्रेन पीमना पहुंची तो वहां स्टेशन नदारद था

पत्थर और लकड़ियों का ढेर पड़ा हुआ था।

"यह क्या हो गया?"

पंद्रह मिनट पहले रंगून से एक स्पेशल ट्रेन मांडले की ओर रवाना हुई। उसमें बर्मा के गवर्नर और चीनी सेनापति च्यांग-काई-शेक थे। दोनों मांडले जा रहे थे। उन्हें यहां से गुजरे पांच ही मिनट हुए होंगे कि एक दूसरी सवारी गाड़ी आकर रुकी और उसपर बम गिराये गये। सिर्फ पांच ही मिनट की भूल जापान ने की।

"बड़े खुशकिस्मत हैं हम। दस मिनट देर से पहुंचे, नहीं तो उड़ ही गये थे।"

दोपहर को एक बजे के लगभग खबर आई कि मांडले का किला उड़ा दिया गया और किले में बैठकर मंत्रणा करनेवाले अफसर लापता हैं।

"और च्यांग-काई-शेक?"

"हां, वह भी गये थे अफसरों के साथ मंत्रणा करने, परंतु भाग्य ही सीधा था। किला उड़ाये जाने के पांच मिनट पहले ही मोटर में बैठकर वहां से रवाना हो चुके थे।"

जब पीमना के मकान जापानी बम-गोलों के नीचे ताश के घरों की तरह ढह रहे थे, हेमकुंवर को प्रसव-वेदना होने लगी।

उनके मकान का सिर्फ एक कमरा एक खम्भे के सहारे टिका रह गया था, बाकी सारा मकान ढह चुका था।

एक पुराना किस्सा है कि कुम्हार के जलते हुए आवे में बिल्ली के बच्चोंवाला एक मटका सुरक्षित रह गया था। यहां भी धराशायी होते हुए मकान में एक कमरा बचा रह गया और उसमें हेमकुंवर ने एक पुत्री को जन्म दिया।

सिर्फ नाल काटने और पेट बांधने भर का ही समय था, उससे ज्यादा नहीं।

× × ×

"दुश्मन के हाथों में कुछ भी सामान न पड़े, इसलिए बचे हुए

पीमना को खुद हम ही भस्म कर देंगे।" 'उजाड़ धरती' वाली सैनिक विज्ञप्ति प्रकाशित हुई।

'उजाड़ धरती' की नीति तो रूस बरतता था। परंतु रूस तो साथ ही जान लड़ाकर दुश्मन का मुक़ाबला भी करता था।

रूस के इन दो कामों में से बर्मी सरकार ने सिर्फ एक को ही अपनाना पसंद किया।

उजाड़ धरती !

"शहर छोड़कर चले जाओ। उजाड़ धरती की नीति अमल में लाई जायगी।"

आधे दिन की बच्ची और सद्यः-प्रसूता पत्नी को लेकर नौतम ने शहर छोड़ा। उन्हें नीम्या के गांव तक पहुंचाने के लिए रतुभाई की मोटर भी नहीं थी। रतुभाई की अनुपस्थिति में ही वह सैनिक उपयोग के लिए पकड़ ली गई थी।

सौ गुनी कीमत पर एक गाड़ी का इंतजाम कर रतुभाई दोनों परिवारों के साथ नीम्यावाले गांव की ओर चल पड़ा।

रास्ते में खून-खच्चर का बाजार गर्म था। बर्मी साठ वर्ष तक अपने राष्ट्र का शोषण करनेवालों से उस शोषण का बदला चुकाने निकल पड़े थे।

परन्तु इस गाड़ी के आगे तो एक बर्मी नारी बैठी हुई थी। रतुभाई और शिवशंकर का लिबास भी लुंगी, कोट और धांऊ-बांऊवाला ही था।

आगे बैठी हुई मा-ह्‌ला के हाथ में धा थी।

नारी के हाथ की धा तो युग-युग से पुरुष के हाथ की धा को कंपाती आई है। मा-ह्‌ला का चंडीरूप बटमारों को दूर रखे रहा।

तीसरी रात को रतुभाई, नौतम, शिवशंकर, नीम्या और मा-ह्‌ला सलाह करने बैठे। शारदू सो रही थी। उसे बुखार चढ़ आया था। नीम्या थोड़ी-थोड़ी देर मे जाकर हेमकुंवर को देख आती थी।

"नौतम भाई !" रतुभाई ने कहा, "रंगून का रास्ता तो बंद हो गया। अब तो आसाम की ओर का पहाड़ी रास्ता ही बचा है। मांडले अभी

तक घिरा नहीं है। आप उधर से ही निकल जाइये। और शिव तुम [illegible]"

"मैं ! मेरा तो सवाल ही नहीं उठता ! हां, यदि यह हिंदुस्तान जाना चाहे तो खुशी से जा सकती है।" शिव ने पत्नी की ओर [illegible] से इशारा करते हुए निश्चिंत होकर कहा।

"मुझे क्यों जाना पड़ेगा ! मैं तो सनान-टो भी छोड़ने [illegible] नहीं थी।" मा-ह्‌ला ने उत्तर दिया।

"मैं तो हिंदुस्तान में पांव भी न दूं।"

"लेकिन अपनी आंखों देख रहे हो कि जापान बढ़ा [illegible] है और अंग्रेज भागे जा रहे हैं।"

"तो क्या हुआ ?"

"नये आनेवाले भूखे भेड़िये होंगे।"

"सुनो !" उसी समय नीम्या ने आकर कहा, [illegible] होगा।"

"हां रतुभाई, अन्यथा तुम्हारी [illegible]

रतुभाई ने नीतम को आंख के इशारे से [illegible] इस संकेत को देखकर नीम्या ने पूछा, "[illegible]

बड़ी मुश्किल से सारा किस्सा [illegible]

"तब तो जरूर जाओ।"

"तुम्हें छोड़कर जाने की हिम्मत [illegible]

"कहती हूं कि जाओ। हमारे [illegible] ही है। जो आयेगा, उसे ही हमारे [illegible] को नये आनेवाले बर्दाश्त नहीं करते। [illegible] कैद हो जाओगे। या तो [illegible] समझकर गोली मार देंगे। [illegible]

"नीम्या, तू मुझे [illegible]

"पत्थर का तो नहीं, [illegible] आदमी साथ में दो बच्चे [illegible] हिंदुस्तान कैसे पहुंचेंगे ? [illegible]

"अच्छा जाता हूं। और शिव तू? तूने तो निश्चय ही कर लिया है न?"

"जी हां।" और वह गाने लगा—

"यह भी देखा,
वह भी देख ले।"

"शिव, नीम्या की रक्षा करना।"

यह कहते-कहते रतुभाई ने आंसू छिपाने के लिए मुंह एक ओर को कर लिया।

इसी समय नीम्या दौड़ती हुई आई और बोली, "जरा चलकर तो देखो डॉक्टरबाबू! शिव की बहन शारदा तो तड़प रही है।"

डॉक्टर ने जाकर देखा और निराश होकर सिर झुका लिया। फिर बाहर आकर शिव और रतुभाई को एकांत में ले जाकर कहा, "प्लेग है। एक साथ चार गिल्टियां! एक स्त्री प्रसूति में और दूसरी को प्लेग!"

"यों पस्त-हिम्मत क्या होते हो, डॉक्टर!" रतुभाई ने गला खंखार कर कहा, "क्या यह अकेले हमारी ही मुसीबत है? आज तो बर्मा के गांव-गांव में, हिंदुस्तानियों के घर-घर में, यही हो रहा है। परंतु इस प्लेग की खबर यदि बाहर किसीको हुई तो हमारी शामत ही आ जायगी। प्लेगवालों को गोली मार दी जाती है।"

"बाहर कोई बुला रहा है।" नीम्या ने आकर खबर दी।

"कौन है?" सब आशंका से कांपने लगे।

"गांव का तजी।"

'तजी' कहते हैं गांव के सरकारी मुखिया को। उस बर्मी मुखिया ने विस्तार से सबके नाम-पते पूछे और कहा, "आपकी टोली में कोई डॉक्टर भी तो है?"

"हां, क्यों?" रतुभाई ने पूछा।

"फौजी आज्ञा के अनुसार एक भी डॉक्टर बर्मा छोड़कर नहीं जा सकता।"

"यह रहा, भाई! यही हूं मैं।" शिवशंकर ने इस डर से कि कहीं कोई डाक्टर गौतम का उल्लेख न कर दे बीच में ही बोलना शुरू कर

दिया, "मैं तो कहीं नहीं जाता। मैं डाक्टर हूं या तेली-तम्बोली, जो पीमना में रहते हुए भी इस सैनिक-आज्ञा की मुझे जानकारी न हो! यह तो यहां एक 'डिलीवरी' का केस है इसलिए 'विज़िट' के लिए आया हुआ हूं। जाओ, पीमना रिपोर्ट कर दो कि डाक्टर नौतम यहां तुम्हारी निगरानी में है और शीघ्र ही पीमना लौट आयेगा और देखो, तजी, मेरी सूरत-शक्ल न देखी हो तो अच्छी तरह से देख लो। कहीं ऐन मौके पर भूल मत जाना।"

"हैं-हैं डाक्टर-बाबू!" और वह वर्मी तजी इस नये डाक्टर नौतम की शक्ल देखे बिना ही झेंपकर चलता बना।

"बोलो भाई!" शिव ने कहा, "अब तुम दोनों मुक्त हो। रात थोड़ी है। अधिक छिपे रहने की गुंजाइश भी नहीं है। बोलो, मेरी शारदा को साथ ले जा सकोगे या यहीं मरती छोड़ जाने का इरादा है?"

"नहीं शिव! वह मेरे साथ····" रतुभाई ने बाहें चढ़ाते हुए कहा।

"मौंपता हूं तुम्हें। मर जाय तो रास्ते में छोड़ देना और जी जाय तो जो तुम्हारा दिल गवाही दे करना।"

दवाई चालू हो गई थी। मोटर का इंतजाम भी हो गया था। पीमना से निकलकर रातोंरात दूर के एक स्टेशन पहुंचना था। वहा से जो भी भाग्य में लिखा होगा, मिल जायगा—सवारी गाड़ी, माल गाड़ी, इंजन, ट्रॉली या और कुछ। लेकिन यदि यहीं सवेरा हो गया और डाक्टर नौतम पहचाने गये तो उनका जाना खटाई में पड़ जायगा।

कार्डन भी गया था। नीम्या को तो अपने 'मको' को विदा तक करने की फुर्सत न थी। प्रियजनों की विदा-वेला में गद्गद् होकर आंसू बहाने के लिए भी अवकाश चाहिए। यहा तो डर था, घबराहट थी, जल्दी मच रही थी, ऊपर से अंधेरी रात थी और सामान के [illegible] मदद साथ लेने की झंझट थी।

"अब इन दोनों को उठाकर मोटर में कौन बैठाये?"

"मुझे तो कुछ नहीं हुआ, मैं खुद [illegible]।" और हेमकुंवर बच्चे को लेकर मोटर में जा बैठी।

"बहन कैसे जायगी?" [illegible]

मान्हूला ने पूछा। उसका स्वर ही इस बात का साक्षी था कि उसकी छाती फट रही है।

शारदू को एक पहलवान ही उठा सकता था!

रतुनाई ने क्षणभर के लिए शिव की ओर देखा और शिव ने कहा, "हां! अब पूछना क्या है? और सुनो रतुनाई!" शिव ने रतुनाई के कान के पास मुंह ले जाकर कहा, "मैं तो अभी से कन्यादान किये देता हूं। ईश्वर तुम्हें..."

"बस हुआ शिवा।"

यह कहते हुए कसरती जवान रतुनाई ने शारदू की मरी हुई देह को अपनी भुजाओं पर उठा लिया। उसकी छाती पर शारदू की छाती, उसके कंधे पर शारदू का माथा और उसके दाहिने हाथ में कदली-से पांवों की पिंडलियां आ गईं।

—और, उसके अंतर में प्रार्थना के स्वर गूंज उठे—"जीवन के देवता! जीवनी-शक्ति का सिर्फ एक ही प्रकाश-कण देना।"

: २७ :

पंद्रह दिन बाद टमु नामक गांव के छोर पर एक विचित्र दृश्य दिखलाई पड रहा था। सैकड़ो ग्रादमी पड़ाव डाले पड़े थे। पड़ाव के ग्रंदर मे एक ग्रनिर्वचनीय दुर्गंध चारों ग्रोर फैल रही थी। गाड़ियो की कतारें ग्रभी तक चली ग्रा रही थी। जेठ महीने की गर्मी पाकर जिस तरह चीटो का दल बिल छोड़कर निकल पड़ता है उसी भांति ग्रादमियों की कतारो-पर-कतारें चली ग्रा रही थी। मार्च का महीना था।

मैल से काले-स्याह हो रहे कपडे पहने, थककर चूर, दो ग्रादमी एक गाड़ी के पास पड़े हुए बातें कर रहे थे ग्रौर गांव के कगले गरीब उन्हे घेरकर खड़े मांग रहे थे, "तठे ए···सेलेये लफंये सीएने पेवा [1] (ग्रो सेठ बीड़ी ग्रौर चाय तो दो।)"

"सीधी तरह से भटपट 'प्याम स्वा' करो! जाते हो कि नही?" उनमें से एक ने बर्मी-गुजराती की खिचडी पकाते हुए कहा, "यह भी ससुर कोई देश में देश है! इस कंगले देश ने ग्राज की विषम परिस्थिति में भी हमें लूट खाने में कसर न रखी। इंगीन से यहा टमु तक रास्ते मे एक भी गाव ऐसा नही पडा, जहां लोग-बाग मांगने के लिए जोकों की तरह न चिपटे हो। एक भी बर्मी ने यह नही पूछा कि बाबूजी, कुछ चाहिए? चावल या दूध ला दूं? गाडियो का प्रबंध कर दूं? उलटे हमारी गाडियां लूट ली ग्रौर गलत रास्ता बतलाकर हमे भटका दिया··· "

"ग्रब बंद करो इस पुराण को तो, ग्रौर इधर सामने देखो।" उसके साथी ने पश्चिम की ग्रोर पहाड़ों का कभी खत्म न होनेवाला सिलसिला दिखलाते हुए कहा।

"यह क्या है ?" पहले ने पूछा ।

"बस यही है नांगा पहाड़ ।"

"अच्छा ! फिर तो इसके पीछे ही है हमारा हिंदुस्तान ।"

"हां, पीछे ही ! लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि टांग उठाई और पहुंच गये पार । पूरे छः दिन की चढ़ाई-उतराई है । और, सेठ, झटपट इन नागा लोगों को मजदूर रख लो, नहीं तो हाथ मलते ही रह जायंगे ।"

"अच्छा, नागा लोग सामने आये हैं ! क्या कहने हैं फिर तो ! चलो छुट्टी हुई । गला छूटा इस सत्यानाशी भूमि से । क्या मुसीबत सिर पर पड़ी है ।...मुर्गियां और भैंस के दूध के सिवा और कुछ मिलता ही नहीं । और एक-एक 'वीसा'[1] दूध के बारह-बारह आने ! जान ही ले ली इस 'मिकुनो' ने तो ।"

"मिकुनो' कहते हैं भैंस के दूध को । मिकु माने भैंस और नो माने दूध ।"

"अरे भाई !" साथी ने कहा, "जंगल में यह भी मिल गया सो गनीमत समझो । परंतु सुनते हैं कि रंगून और मोलमीन से जहाज में चलने वालों को तो छः-छः दिन तक मुट्ठी चनों के सिवा और कुछ भी खा को नहीं मिला और सो भी उन मुट्ठीभर चनों के मुट्ठी-मुट्ठी भर रुप देने पड़े ।"

"वे उधर बैठे हैं यू० पी० के भैया लोग । ये तो वे ही हैं न, जिन सात आदमी रास्ते में मर गये ।"

"हां, वे ही हैं ।"

"उधर वह मदरासी औरत बैठी रो रही है । अब क्यों गला रही है ? हैजा हो गया तो कोई क्या करे ? उसका पति मर गया दूसरा कोई होता तो क्या बच जाता ?"

"ठीक है, भई ! अपने बाल-बच्चे देश पहुंच गये तभी न ऐसी सूझती हैं ।"

"यह कम्बख्त देश भी कोई देश है ।" पहले ने फिर वही रो

[1] साढ़े तीन सेर के लगभग ।

कर दिया, "नोटों की गड्डिया न बांध ली होती तो रास्ते में पानी को भी तरस जाते। इधर देखो, ये मूर्तिया कौन चली आ रही हैं ? चुडैल की नातिन ही हैं या और कुछ ?"

सामने की ओर से तीन बर्मी स्त्रियां चारों तरफ घूमती और सब लोगों से "बावू त्वामत्ता ?" (देश जा रहे हैं, बावूजी ?) कहती हुई आ रही थीं। इन दोनो के पास आकर भी उन्होंने यही बात कही।

"हां भई ! जायेंगे ही अब तो।" कहकर उस आदमी ने सिर हिलाया।

"हा'''आं'''बावू त्वामे। (बावूजी देश जायेंगे।)" वे स्त्रियां आपस में सहज भाव से कह रही थीं।

परंतु जाने क्यों इस आदमी को उन शब्दों में व्यग्य की ध्वनि सुनाई दी, "जा रहे हैं भई, जा रहे हैं। तुम्हारे इस सत्यानाशी देश से मुंह काला कर रहे हैं। मौत आ गई है अब तो, फिर क्यों हमारी जान खाये जा रही हो ! जा रहे हैं। हा, जा ही रहे हैं। परंतु याद रखना, एक दिन फिर लौटकर आयेंगे।"

यह कहते हुए उसने उठने की कोशिश की और कहा, "पांव ही चिपक गये। सुन्न हो गये। ये दिनभर की गाड़ियां और इनके मुंह जैसे बैल ! कोई बैठे भी तो कैसे बैठे ? रातभर आग जलाकर इन बनियों के डर से पहरा दो और दिनभर बिना रुके घने जगल में चलते रहो। छः दिन तक लगातार जगल, बस घना जगल ! कितना घनघोर जगल है यह ! राह भी नहीं सूझती। ध्यान मे रखना भई इस जगल को ! एक बार भी नहीं काटा गया है। बेशुमार लकड़ी निकलेगी। और लकड़ी क्या है खालिस सोना है। कभी लौटकर आना हुआ तो भूल मत जाना इस जंगल को।"

"परंतु हमारे सामान की एक गाड़ी अभी तक क्यों नहीं आ रही है ?" दूसरा साथी गर्दन ऊंची किये पूर्व की ओर घने जगल को टकटकी लगाये देख रहा था।

"आ चुकी भाई ! यह देश भी क्या देश है ? मनुष्यता तो पाताल में जा छिपी है।"

× × ×

पड़ाव के एक दूसरे हिस्से में नौतम, रतुभाई, दो स्त्रियां और दो बच्चों का एक दल बैठा था। चार आदमियों द्वारा उठाकर लाई हुई एक डोली में शारदू लेटी हुई थी।

देखनेवालों की निगाहें बचाकर सतर्कतापूर्वक डॉक्टर नौतम उसके शरीर की परीक्षा कर रतुभाई से कह रहा था, "बच जाय तो आश्चर्य नहीं।"

"लेकिन अभी तो छः दिन और···"

"पहाड़ी हवा फायदा भी कर सकती है। लेकिन बारिश हो गई तो फिर खतरा है। अरे, वह देखो, कोई गोरा मेरी ओर ताक रहा है। कहीं पहचान लिया तो यहां से अब भी मुझे लौटा ले जायगा। हे मेरे ईश्वर! वह तो इधर ही आ रहा है। कहीं सैनिक विभाग का कोई गुप्तचर ही न हो। लो आ ही गया! निश्चय ही कोई···"

और उधर दूर से ही उस गोरे ने आवाज़ दी, "हल्लो!"

"हल्लो! अरे, आप यहां कहां से?" डाक्टर नौतम ने फयुवाले उस अंग्रेज़ ठेकेदार को पहचाना और तब कहीं जान में जान आई।

"और कहां होता।"

"कहां जा रहे हैं?"

"और कहां जाऊंगा? ऑल रोड्ज़ लीड टू इंडिया (सभी रास्ते हिंदुस्तान ही ले जाते हैं।)"

"अकेले हैं?"

"नहीं, साथ में दो बच्चे भी हैं।"

"परंतु आप तो यूरोपियनोंवाले रास्ते से होकर जा सकते थे।"

"हां, जा तो सकता था और उधर मुझे हाथी या ऐसी ही कोई सवारी भी मिल सकती थी, परंतु मैंने सोचा कि जिस रास्ते से हिंदुस्तानी जाते हैं, मुझे भी उसी रास्ते जाना चाहिए। चलिये, आपसे मुलाकात हो गई। आप किस रास्ते होकर आये हैं?"

"पीमना से मालगाड़ी में मांडले, मांडले से मोटर-लांच में मींमु, मींमु से मोटर लॉरी में मनीला, मनीला से स्टीम-लांच में कलेवा, कलेवा से इंगोन तक नाव में और इंगोन से यहां बैलगाड़ी के रास्ते।"

"कितना संक्षेप में कह डाला आपने ?" गोरे ने लंबी सांस लेते हुए कहा।

"दुःख का लंबा-चौड़ा बखान करने से क्या फायदा !" नौतम की आवाज धीमी हो गई।

"आप लोगों को नावें खींचनी पड़ी थीं ?"

"जी हां, किनारे की जलती हुई रेतों में पैदल चलकर रस्सियां खींचना पड़ी।"

"हमारी लांच में तो सभी गोरे थे। जगह रहते हुए भी हिंदुस्तानियों को बैठने नहीं दिया। लांचवाले हिंदुस्तानी थे। वे नाराज हो गये। उस समय तो कुछ नहीं बोले, परंतु बाद में यह कहकर कि वजन ज्यादा हो गया है, उन्होंने हमारी औरतों को पैदल चलने के लिए बाध्य किया। उसमें कई तो मर ही गईं।"

"यूरोपियन स्त्रियां ?" नौतम ने विस्मित होकर पूछा।

"जी हां ! आपकी पत्नी अब कैसी हैं ?"

"वह रहीं।" नौतम ने पत्नी की ओर दिखलाते हुए कहा, "अब वह अकेली नहीं है।"

"क्या कह रहे हैं ? बच्चा हो गया ? कितने दिन हुए ?"

'अठारह ! तीसरे दिन ही हम चल पड़े।"

"और दोनों जीवित हैं।"

"जी हां ! मजे से जी रहे हैं।"

"आश्चर्य है !"

"भुमीवत और मर्दानगी दोनों का साथ है। ये दूसरी महिला। इन्हें प्लेग हो गया था। बेहोशी की हालत में उठाकर लाये। लांच के तलघर में छिपाना पड़ा···"

वे लोग ये बातें कर ही रहे थे कि—

"अरे ओ डॉक्टर ! आ पहुंचे क्या ?" यों चिल्लाते हुए मैले कपड़े-वाले वे दोनों साथी वहां आ धमके, "भले आदमी बोलते भी नहीं ?"

वह गोरा शिष्टाचार की खातिर वहां से दूर हट गया।

"अच्छा, आप हैं दामजी सेठ, शांतिभाई सेठ ! क्या हुलिया बना

रखा है आपने ! मैं तो एकदम पहचान भी न पाया । परंतु अब मेहरबानी कर मुझे डॉक्टर मत कहना, नहीं तो मैंने जो प्रकट कर दिया कि तुम दोनों मालदार हो तो वह गोरा पकड़कर वापस भेज देगा । फौजी अफ़सर है। तुम्हीं लोगों को पूछ रहा था ।"

"अच्छा भाई, अच्छा । रहने भी दो अब ! पर मैंने कहा कि यह देश भी कोई देश है ? बड़ा जालिम है यह देश । और यहां के आदमी ? ईश्वर बचाये । गजब के शैतान हैं । तारीफ करते नहीं अघाते थे तुम, अब देख लो इनकी संस्कृति । उन्होंने गांव-गांव बस यही रट लगा रखी है कि 'बाबू त्वामला ! बाबू त्वामला !' यों ऊपर से दीखने में भोलेभाले और अंदर-ही-अंदर जहर की छुरी । जापान से मिल ही गये न ? मिले तो मिले, उसे यहां बुला भी लाये !"

"मुद्दे की बात करो, सेठ !" नौतम ने कहा । "आपका पैसा तो सब देश पहुंच ही गया होगा ?"

"वह तो पहुंचता ही । 'नेवतों का पानी नेवतों में ही रहा है कहीं ?' अपन तो लल्लो-चप्पो करना जानते नहीं, सच बात कहते हैं । इन पंद्रह दिनों में इस देश के लोगों का जो अनुभव हुआ वह वर्णनातीत है । बिना पैसों के तो कटी अंगुली पर भी पेशाब करने को तैयार नहीं होता । लाओ पैसा ! टव्या पेवा ! नप्या पेवा ! पेवा, पेवा और पेवा की रट के सिवा और कोई बात नहीं । और उधर रात हुई नहीं कि आये घा लेकर धमकाने !"

"याद तो करो सेठ, हमीने टव्या-नप्या (पैसे-रुपये) बिना कौन-सा काम किया है इन लोगों का ?"

"तुम तो डाक्टर जलती आग में घी होम रहे हो, अब क्या कहूं । इस सत्यानाशी देश को छोड़ते समय भी तुम्हारे ताने बंद नहीं हुए !"

"अच्छा तो इस देश को छोड़कर जाते-जाते क्या इसीकी बुराई करनी उचित है ?"

"अच्छा बाबा कान पकड़ा । जाने भी दो । यह है आपका काफला ! और यह बच्चा···"

"ईश्वर का दिया हुआ है ।"

"यह बात है ! जाते-जाते भी इस देश से वसूल किये जा रहे हो। फिर क्यों सुनोगे भाई, इस देश की बुराई तुम। दोनों हाथ लड्डू हैं तुम्हारे।"

"परंतु शांतिभाई सेठ" नीतम ने पूछा, "आप चुप क्यों हैं ?"

"ऐसे ही। हमारी एक गाड़ी नहीं आई है।"

"छोड़ो भी सेठ गाड़ी का रोना।" शामजी सेठ खिल रहे थे। "किस्मत सराहो अपनी। सही-सलामत आ गये, उसकी खुशी मनाओ। तुम्हारी छाती पर यह गाड़ी खूब चढ़ बैठी है। गाड़ी में ऐसा था ही क्या ? जाने भी दो जहन्नुम में। समझना गाड़ी से ही बला टली। अपनी आंखों तो देख ही आये हो कि हैजे में लोग मक्खियों की तरह मरते थे और मां अपने कै करते बच्चे को छोड़कर चल देती थी, और अपनी ही गाड़ी मुर्दों से पटे हुए रास्ते पर होकर चलती थी।"

"जरा हम लोग यहां से दूर हट जायं।" नीतम को पत्नी और शारदू के दुर्बल मस्तिष्क पर ऐसी बातों से आघात पहुंचने का डर था।

"मेरा तो यह कि मुझे मुर्दे देखकर कुछ नहीं होता। कितने ही देख रखे हैं। परंतु शांतिभाई सेठ ठहरे नाजुक मिजाज ! मुर्दा देखते ही ढेर हो जाते। मैं तो गाड़ी के पहियों के नीचे मुर्दे कुचलते देखकर भी ....."

यह सुनकर डॉक्टर नीतम को मितली-सी आने लगी। उसने मुंह एक ओर को कर लिया। दूर से रनुभाई एक डोली और चार उठाने-वालों को लेकर आ रहा था। पास आने पर शामजी सेठ ने उसे पहचान लिया और जरा गंभीर होकर बोले, "अच्छा ! यह हजरत भी आपके साथ हैं। तो हम चलें, डॉक्टर ! फिर कहीं आगे मिलेंगे। अभी तो हमें अपनी गाड़ी का इंतजार करना पड़ेगा।"

इतना कहकर वह और शांतिदास सेठ चलते बने। रनुभाई का उन्हें खासा डर था। थोड़ी देर बाद गोरासाहब नागा कुलियों के सिर पर अपना सामान रखवाये नीतम के पड़ाव पर आ पहुंचा। उसके साथ दो बच्चे थे। हेमकुंवर ने प्रेम-पूर्वक उन्हें अपने पास बैठाया और काजू आदि सूखी मेवा खाने को दी। अंग्रेज कुमारी हेमकुंवर की गोद में बच्ची को लेकर खिलाने लगी। एक रात उन लोगों ने वहीं साथ-साथ बिताई।

दूसरे दिन तड़के उनका पर्वत-आरोहण आरंभ हुआ। सबके-सब पैदल ही चढ़ने लगे। नौतम ने नन्हीं बच्ची को उठाया। चारेक वर्ष का बल्ला पैदल ही चलने लगा। बड़ा करुणोत्पादक दृश्य था। साहब ने उसे उठाकर अपने कंधे पर बैठा लिया। सद्यःप्रसूता हेमकुंवर, ठिठक-ठिठककर चलने लगी। शारदू की डोली और रतुभाई आगे निकल गये।

जब अरुणोदय हो रहा था और मजूरों ने सुस्ताने के लिए पहली बार डोली उतारी तो रतुभाई ने खड़े होकर पहाड़ के पीछे की ओर छूटे जा रहे देश की ओर टकटकी लगा दी। बर्मा का अंतिम प्रवेश-द्वार छूटा जा रहा था।

शतमुखी मां इरावदी की स्वर्णिम धाराएं मानो अभी तक कनक-रेखाओं-सी दूर-दूर तक फैली दिखाई दे रही थीं। फया के ऊंचे कलश चमक रहे थे। बुद्ध की शत-सहस्र विराट् और वामन प्रतिमाएं, बैठी और लेटी हुई अगणित देव-प्रतिमाएं उसकी आंखों के आगे अभी तक नाच रही थीं।

लुंगी-एंजी पहनने और वेणी में फूल गूंथनेवाली वे नारियां फिर कभी नहीं दिखलाई देंगी। नीम्या और मा-ह्ला की मधुरवाणी उसके कानों में गूंज रही थी; और सोना चाची के शरीर को सदा-सर्वदा महकाने-वाले तनाखा-लेप की सुगंध उसके नथनों में भरी हुई थी।

छूट ही गया सब ! खाली सपने रह गये ! कल्पना में ही देखना बदा है क्या अब उस सबको ? विश्व-युद्ध की समाप्ति के बाद भी न जाने फिर कब बर्मा में आना मिले ?

उन मधुरभाषी लोगों की याद आते ही छाती फटने लगी।

"नीम्या का कांऊले मुझे याद करता होगा, मेरे लिए रोता होगा।"

झर-झर-झर कर आंसू बह चले। आंसू की बूंदों पर सूर्य की किरणें प्रतिबिंबित हो उठीं।

"आशा और नवजीवन का संदेश लानेवाले हे दिवाकर, बर्मा की कोई नई खबर हो तो सुनाओ ! आग और प्रलय की सर्वनाशिनी आंधी कहांतक पहुंची है ? उस संहार-लीला में नीम्या, कांऊले और

मा-ह्.ला सुरक्षित तो हैं ?

"पर या बाहर के लुटेरों के हाथों पड़कर उनके शरीर तो क्षत-विक्षत नही हो गये ?"

अतिस्नेही मन शंका-कुशंका करने लगा—"कही कुछ हुआ तो नहीं ? कही नीम्या का शरीर आततायियों की बर्बरता का शिकार तो नही हुआ ? यदि हुआ हो तो मैं घर जाकर दुनिया को क्या मुंह दिखलाऊंगा ?

"माह्.ला क्या कर रही होगी ? शारदू को विदा करते समय मैंने उस रात उसकी वे आखें देखी थी। उन आखों ने सबकुछ कह दिया था। प्यारी ननद को विदाकर वह खड़ी रह गई थी। अब किसी भी दिन कोई खबर नही मिलने की। तार, चिट्ठी, समाचार, संदेश कुछ भी नहीं आने-जाने के।

"मानो सब कुछ अगाध अतल-जल में डूब गया। दो-चार वर्तुल, दो-चार बुलबुले और सब शांत हो गया। वहावाले वहा और यहावाले यहा।"

शारदू की डोली की ओर पीठ किये हुए ही वह खड़ा था।

ठीक बर्मियों की तरह उनकी प्रथा के अनुसार ही रतुभाई घुटनो के बल बैठ गया और झुककर धरती पर अपना कपाल टेक दिया। फिर कहने लगा—

"साठ वर्ष तक मेरा पोषण करनेवाली, हे वसुंधरा, हे अन्नपूर्णा, मनसा-वाचा भी यदि मैंने तेरे अवगुण देखे हों तो पेट का बेटा समझकर क्षमा करना।

"हे धरती-माता, पिछले साठ वर्षों से मेरे कई देश-वासियो ने तेरा शोषण किया है। उन्हें क्षमाकर देना। वे क्या करें बेचारे ? हमारी धरती ही जर्जर, शोषित और अन्न-हीन हो रही है। इसलिए हम तेरे द्वार पर भूखे और कंगाल बनकर आये। हम आये अपढ़ और संस्कृति-विहीन होकर। सिर्फ अपना पेट भरने, अपनी भूख की ज्वाला बुझाने। दूसरों के यहा रहने और व्यवहार करने में हम अनभिज्ञ थे। हमें क्षमा

"नासमझी के कारण तेरी बुराई भी की होगी, माता, क्षमा करना।

"कभी वह दिन भी आयेगा कि मेरे देशवासी तेरे आंगन में तेरे अपने बनकर आयेंगे।

"किसी दिन तू हमारी अपनी बन जायगी। आज तो जान-बूझकर विलगाव किया है।"

रतुभाई ने प्रणाम किया, फिर-फिर प्रणाम किया और उठकर चल पड़ा। डोली में लेटी हुई शारदू की क्षीण-दृष्टि ने रतुभाई का अश्रु-स्नात चेहरा देखा और धीमी आवाज में पूछा, "मेरी भाभी ने कुछ कहा था ?"

"सभी कुछ बतलाऊंगा।" रतुभाई के इस स्नेहसिक्त उत्तर ने शारदू के विह्वल मन को शांत किया।

लगातार पंद्रह दिन और पंद्रह रात अपने बिस्तरे के पास बना रहने-वाला रतुभाई अब शारदू के लिए अपरिचित नहीं था। देश पहुंचकर एक नई ही दुनिया बसाने के मनोरम सपने देखने में वह तल्लीन रहने लगी थी।

पैदल चलनेवाले भी आ पहुंचे। उन्होंने रतुभाई को घुटनों के बल बैठते देख लिया था। उन्होंने भी खड़े रहकर बर्मा की ओर अंतिम बा[र] दृष्टि डाली।

"आओ बच्चों, हम भी प्रार्थना करें।" यह कहकर गोरे ने अपने दोनों बच्चों को घुटनों के बल बर्मा की ओर बिठाकर नमस्कार कर-वाया। नौतम भी अपना टोप बगल में दबाये पूर्वाभिमुख खड़ा हो गया।

सांझ होते-होते वे लोग एक पहाड़ चढ़कर उसकी उपत्यका में उतर गये। ब्रह्म-देश उस पहाड़ की ओर छिप गया। उसके आगे पूर्णरूपेण पर्दा पड़ गया।

पहाड़ों का कभी खतम न होनेवाला सिलसिला! पहाड़, पहाड़ और उसके बाद पहाड़! न तो कहीं गांव दीखता है, न कोई जलाशय ही। कहीं भूली-भटकी झोंपड़ी का भी नाम-निशान नहीं। अपने सिर उठाये एकाकी पहाड़ खड़े हैं। पहाड़ों में सरकार द्वारा काट-

कर बनाई हुई नई पगडंडी और उसपर होकर भारतीयों का यह चींटी-दल चला आ रहा है। दूर-दूर तक काले धब्बे हिलते, रेंगते दिखलाई दे रहे हैं। इन पगडंडियों के एक ओर ये गगन-चुंबी गिरिशृंग और दूसरी ओर हजारों फुट गहरी कंदराएं। जरा-सा पांव चूकते ही हजार हाथ नीचे, जहां हड्डी-पसली का भी पता न चले! खाने के लिए जो कुछ पास में था उसीसे काम चलाना था और पीने के लिए पानी ठेठ नीचे कंदराओं में जाकर जैसा भी मिल जाय लाकर पीना होता था।

चढ़ना और उतरना—चढ़ना और उतरना—ऐसे पहाड़ी रास्ते को पार करने का इसके सिवा और कोई चारा नहीं था। यहां न था खच्चर, न गधा और न बकरा ही। ये सिर्फ मणिपुरिया नागा कुली और बर्मा से भागकर आनेवाले हिंदुस्तानी।

साहब का सात वर्ष का बालक इस रास्ते पर गहरी चिंता का कारण बना।

पहले दिन की रात इन लोगों ने एक जंगली नदी के कांठे में बिताई। पकाया, खाया और रातभर पहरा दिया।

दूसरे दिन पिछली रात को साढ़े तीन बजे के लगभग ही चल पड़े। दुपहर तक चलते रहे। सांझ को मूसलाधार पानी बरसना शुरू हुआ। सद्यः प्रसूता हेमकुंवर—और उसके जैसी तो कई—भगवान पर भरोसा रख भीगती हुई चली जा रही थीं।

तीसरे दिन साहब का बालक पिछले दिन दिन भर पानी में भीगने और रात को गीले कपड़े पहनकर हवा में सोने के कारण बीमार हो गया। दो दिन में चवालीस मील का रास्ता पार करने के बाद तीसरे दिन बाईस मील का रास्ता पार करना उसके लिए कठिन हो गया। उसकी गति धीमी पड़ गई। पिता-पुत्र पीछे रह गये।

सांझ को तीसरी मंजिल पर मुकाम कर सब उनका रास्ता देखने लगे। अंत में साहब अकेला ही कंधे पर बल्ले को बैठाये दूर से आता दिखाई दिया।

नन्ही बच्ची को बहलाती हुई गोरी कुमारिका तो इन लोगों के साथ काफी हिलमिल गई थी। मुसीबत ने और बाह्य परिस्थितियों ने गोरे-

काले के भेद को नहीं-सा कर दिया था। मानवता अपने सही रूप में निखर आई थी। उस लड़की ने भी पंद्रह दिन से कपड़े नहीं बदले थे, स्नान भी नहीं किया था, उसे आलू उबालने के सिवा और कुछ आता ही नहीं था। उसका खाना रतुभाई पका दिया करता था।

साहब आकर पहले तो आराम से बैठ गया; फिर अपना मुंह पोंछा। लड़की ने पूछा, "डैडी ! रोबी कहां है ?"

"ईश्वर के यहां !" गोरे ने आसमान की ओर आंखें उठाते हुए कहा।

लड़की आंखें फाड़-फाड़कर बाप की ओर देखने लगी। बाप ने कहा "डॉलिङ्ग, रोबी को तो हमेशा के लिए पीछे छोड़ आया हूं।"

यह सुनते ही लड़की धाड़ें मार-मारकर रोने लगी। सारा वन-प्रदेश उसके क्रंदन से गूंज उठा। वे मां के दो बच्चे थे। उनमें से एक मानो जंगल में भटक गया और गुम हो गया।

"रो मत बेटी !" बाप ने कहा, "इस सद्यःप्रसूता को दुःख होगा।"

रतुभाई, नौतम आदि सब दौड़े आये और पूछने लगे, "रोबी का क्या हुआ ?"

"उसे कल से ही न्यूमोनिया था। रास्ते में जोर पकड़ा। ओढ़ाने-पहनाने को तो कुछ था नहीं। मैंने उठाकर दूसरे कंधे पर बैठा लिया। पानी तो बरस ही रहा था। रास्ते में ही रोबी मर गया।"

"फिर ?"

"उसके शरीर को एक ओर रखकर चला आया।"

"कल से बुखार था तो मुझसे क्यों नहीं कहा।"

"कहकर भी क्या होता ? तुम डॉक्टर तो हो नहीं !"

नौतम का मुंह जरा-सा हो गया। उसने जान-बूझकर अपने-आपको गुप्त रखा था। बोला, "दोस्त, मैं अभागा सचमुच ही डॉक्टर हूं। परंतु मुझे गुप्त रूप से भागना पड़ रहा है। रोबी का मरना-जीना तो भाग्याधीन था, परंतु मैं डॉक्टर होते हुए भी अपना कर्त्तव्य पूरा न कर सका, इसका मुझे बड़ा दुःख है।"

"इसमें तुम्हारा कोई दोष नहीं, भाई। एक अंग्रेज पर विश्वास रख तुम अपना सच्चा परिचय दे ही कैसे सकते थे!"

एक अंग्रेज की ऐसी मृत्यु और उसकी मृत देह की ऐसी दशा उन पराधीन भारतीयों ने प्रथम बार ही सुनी।

नागा पहाड़ों की निर्जन कंदराओं में आपसी भेद-भाव मिटकर मानव-प्राणियों के बीच जो समता दीख पड़ी वह कल्याणकारी होने हुए भी कितनी करुण और दुःखद थी।

हेमकुंवर रोबो की बहन को अपनी छाती में लगाये रातभर आश्वासन देती रही। पिता तो पहाड़ की चोटी की तरह अडिग बैठा रहा। उसने गौतम और रतुभाई से कहा, "यूरोप का प्रत्येक घर आज जो कुछ अनुभव कर रहा है, उसके परिमाण में मेरे रोबी का अवसान तो पासग में भी नहीं ठहरता। इतना दूर क्यों जायं? देखो, वह पंजाबिन रो रही है। मैंने अपनी आंखों उसके पति-पुत्र को रास्ते में कै करते और गिरते देखा।' उन्हें अंतिम बार चुल्लूभर पानी पिलाये बिना ही उस बेचारी को अपने साथियों के साथ चल देना पड़ा।"

रात में डॉक्टर गौतम ने कहा, "आपकी और बच्ची की मनोव्यथा को कुछ राहत मिले, इसलिए हम लोग एक दिन यहीं रुक जाय।"

"एक को तो खो ही दिया है, अब यदि इस दूसरे बच्चे को भी खोना हो तभी यहां ठहरना।" साहब ने गौतम के बच्चे के सिर पर हाथ धरते हुए कहा, "चलो! चलो! रुकने का नाम मत लो। हम रुक सकते ही नहीं। यह तो संग्राम है—भाग्य से और खुद भाग्य-नियंता से, यहां रुकने का नाम पराजय है।"

अविचलित और संयम-पूर्ण शक्ति के उस नमूने की ओर दल के सब लोगों की आंखें उठी की उठी रह गईं। परन्तु वह खुद तो सिगार के मुंह पर जमी हुई राख को झाड़ उसके जलते हुए छोर को निर्निमेष दृष्टि से देख रहा था।

"सुलगना, खत्म होना, राख होते जाना और गिरते जाना, लाइफ इज ए सिगार, माई फ्रेंड्स! (जीवन भी एक सिगार ही है मेरे दोस्तो)!" ये मधुर वैन उस लुटे हुए पिता के मुंह से और भी मधुर लग रहे थे

और सुननेवालों के मन-प्राण को प्लावित कर रहे थे।

"कम-अलांग माई ब्यॉज़ ! पैकअप ! नो पॉज़िग, नो वेटिंग, नो लक्ज़री ऑफ मोर्निंग वी सिम्पली कांट अफोर्ड इट (उठो साथियों, कमर कसो ! रुकना, प्रतीक्षा करना, रोकर दिल का भार हलका करने का सुख भी हमारे वस का नहीं)।"

इन शब्दों के साथ रात के तीन बजे उसने सबको जगाकर तैयार किया। और अपनी पुत्री से कहा, "इधर तो आ ! देख मैं एक तरकीब बताता हूं।" यह कहकर उसने अपने पास का एक कपड़ा उसकी पीठ पर बांधकर झूला-सा बना दिया और फिर हेमकुंवर के पास से उसकी बच्ची को लेकर उसमें सुला दिया और बोला, "इस बहाने हम बर्मा देश की एक सुंदर यादगार अपने साथ ले जासकेंगे। बर्मी और चीनी स्त्रियों को इस तरह बच्चे उठाते हुए देखा है न ? और अब ? कहां गया मेरा बल्ला ! ओ यू लिटिल डेविल बल्ला ! कम अलांग ! तेरे लिए भी एक आराम-देह बैठक बना दूं।" इतना कहकर उसने बल्ले को कंधे पर उठा लिया और उसके पांव टिकाने के लिए अपने गले में एक रस्सी डाल उसमें लकड़ी लटका दी।

शोक-संतप्त हृदयों से चले जा रहे उस दल में साहब के ऐसे मनोरंजक करतबों को देख-देखकर नौतम रतुभाई से कहता था, "हमारी डाक्टरी विद्या में जिसे 'ट्रान्स्फ्यूज़न ऑफ ब्लड' अर्थात् एक के शरीर में से दूसरे के शरीर में रक्त चढ़ाना कहते हैं, वही यहां हो रहा है। हमारे बाल-वात्सल्य को यह साहब अपने रिक्त हृदय में उंड़ेले जा रहा है।"

बाकी के जो पांचेक पड़ाव थे, उनमें से प्रत्येक पड़ाव पर वह साहब

नीचे उतरकर वह दल के सभी आदमियों के लिए पानी लाता और उन्हें पिलाता था।

"यह मैं किसीपर उपकार नहीं कर रहा हूं!" वह कहता, "पानी की प्रत्येक बूंद मेरे रोज़ी को पहुंचेगी।"

साहब के इन खेल-तमाशों को देखकर डोली में पड़ी हुई शारदा के चेहरे पर मुस्कराहट दौड़ जाती थी और तुरंत बाद ही मुस्कराहट से फैली हुई उस श्रीहीन मुखाकृति पर आंसू की धाराएं बहने लगती थीं।

× × ×

इंफाल! —अंत में मणिपुर के प्रधान शहर इंफाल के राजमहल दिखलाई पड़े। और सबसे पहले गोरासाहब हर्षावेश में पुकार उठा, "लैण्ड, माई ब्वॉय, दी प्रामिस्ड लैंड! आ पहुंचा, हमारी मनोरथ-सिद्धि का स्वर्गधाम आ पहुंचा!"

परंतु दल के साथियों में से एक भी उसकी हर्ष-ध्वनि में सम्मिलित न हो सका! सबको रोज़ी की अनुपस्थिति साल रही थी। सबसे अधिक दुःख तो हेमकुंवर को हो रहा था। वह अपनी वेदना को मन-ही-मन सहेजे आ रही थी। बाद के पांच मुकामों में से जब-जब उसने अपने साथ की सूखी मेवा बांटी थी तो हर बार एक-एक मुट्ठी भरकर उसने प्रतीक्षा की थी। उसे भ्रम हो जाता था कि कोई एक रह गया है। परंतु निराश होकर उसे वह मुट्ठी डब्बे में छोड़ देनी पड़ती थी और एक गहरी सांस उसकी छाती को सालती हुई निकल जाती थी!

पलेल के कैंप में जब साहब ने बल्ले को कंधे से नीचे उतारकर विदा ली तो हेमकुंवर के दुःख का बांध अधिक टिक न सका। वह फूट-फूटकर रोने लगी। नौतम ने बड़ी मुश्किल से समझा-बुझा और डांट-डपटकर उसे चुप किया। बल्ला रोकर उन बाप-बेटी के पीछे भागा। साहब ने अपने मुंह से वन-बिलाव के गुर्राने का-सा शब्द निकाल उसे डराकर वापस किया। दल के और लोग हवा में हिलते निरंतर दूर होते जाते साहब के सिर के टोप को टकटकी लगाये देखते रहे, देखते रहे।

× × ×

भारत के किसी स्टेशन पर एक सवारी गाड़ी खड़ी हुई थी। एक

दूसरी गाड़ी उसके पास की पिछली पट्टी पर आकर रुकी। वह फौजी ट्रेन थी। उसके डब्बों पर रेडक्रास के चिह्न बने हुए थे। उस ट्रेन में घायल सैनिक थे।

उस सैनिक ट्रेन के एक डब्बे में दो आदमी बैठे हुए थे। उनका सिर, छाती, हाथ, कंधे सफेद पट्टियों में कसे हुए थे।

उन दोनों की आंखें अपने सामनेवाली गाड़ी के एक डब्बे में टक-टकी लगाये देख रही थीं। दोनों ने आपस में आंखों से एक-दूसरे को इशारा किया। फिर उनमें से एक ने खिड़की से बाहर झांककर इत्मीनान कर लिया कि नीचे खड़े हुए संतरी का लक्ष्य कहीं और है। उसने सामने वाले डब्बे के एक यात्री को लक्ष्य कर बहुत ही धीमी आवाज़ में पुकारा—

"बाबू ! बाबूले ! डॉक्टर बाबू ! लतु बाबू !"

जिस ब्रह्म देश को पीछे छोड़ आये थे वहां के इस अतिपरिचित श्रुति-मधुर स्वर को सुनते ही डब्बे के दो भारतीय युवक चौंककर इधर-उधर देखने लगे। क्षणभर तो भ्रम ही हुआ, मानो सोना चाची स्वप्न में पुकार रही हों !

आवाज फिर से सुनाई दी और उन्होंने सामनेवाले डब्बे की ओर देखा। खपच्चियों और पट्टियों मे बंधे हुए वे दोनों आदमी एकबारगी पहचान में नही आ रहे थे। इतने में उनमें से एक ने हाथ ऊंचा किया।

वह हाथ नहीं, ठूंठभर था। हाथ की पूरी लंबाई से आधा और पंजे के स्थान पर मात्र कोहनी का ठूंठ। पट्टियों से बंधी हुई वह कोहनी ऊंची उठी और उस आदमी के कपाल में जा लगी।

वह सलाम कर रहा था। उसकी वह सलाम इतनी बीभत्स और भीषण था कि रतुभाई के मुंह से चीख निकल पड़ी, "मांऊ-मांऊ !"

सामनेवाले ने हंसकर गर्दन हिलाई और कहा, "पहचान लिया आपने !"

दूसरे आदमी ने हाथ और कोहनी के बदले अपनी दाहिनी टांग ऊंची उठाकर रतुभाई को सलाम किया और बोला, "मुझे पहचाना ? मैं हूं मांऊ-पू !"

और उसने अपने दोनों कंधे डॉक्टर नौतम को दिखलाये।

"नीम्या का पति ! अरे रे !" डॉक्टर ने कहा, "इसके तो दोनों ही हाथ नदारद हैं।"

वे दोनों टूटे बडी शान से अपने कटे हुए हाथ और बिना हाथवाले कंधे हिला-हिलाकर इस तरह दिखला रहे थे मानों उन्होंने कोई बड़ा मीर मारा हो !

डॉक्टर नौतम और रतुभाई को तो इस दृश्य ने विस्मय-विमूढ़ कर दिया। अपने अतिपरिचित इन दोनों वर्मी युवकों के क्षत-विक्षत चेहरों-को पहले तो वे एकबारगी पहचान भी नहीं पाये, परन्तु पहचानने के दो-एक क्षणों में मन पर जो बीती वह अवर्णनीय है। आंखों में आंसू भर आये। रतुभाई ने हाथ के इशारे से पूछा, "यह क्या है ?"

"माडले का किला, जहां आपके लाजपतराय और तिलक कैद किये गये थे, हमने उड़ा दिया। अपने हाथ भी हम वहीं होम आये।"

बात एकदम समझ में नहीं आई। माडले का किला इन दोनों ने कहां से और कैसे उड़ाया ? जापान से तो नहीं जा मिले थे ?

हां, जापान से ही मिल गये थे। नवीन पार्टी का यह जलता अंगारा मांऊ-मांऊ वर्मा से गुम होकर अपने बड़नोईसहित जापानियों से जा मिला था।

"नीम्या को···" माऊ-नू के मुंह से सिर्फ इतने ही शब्द निकल पाये थे कि घर्-घरकर कैदियोंवाली रेलगाड़ी चल पड़ी। थोड़ी देर बाद तो उस ट्रेन के अंतिम डिब्बे की पीठ पर की तीन लाल बत्तियां भी अंतिम झलक दिखलाकर अंधकार में विलीन हो गई।

मां जैसी आकृति का, बचपन से अंग्रेजी बोलनेवाला, विचारक और पढ़ा-लिखा यह युवक बात-की-बात में फना हो गया था; ··· के इस प्रेमी को अंतिम बार रंगून-टो में दगाइयों का नेतृत्व करते ··· एक नारी के आगे परास्त होकर लौटते हुए देखा था। ··· अभी वह क्या कह गया ? कहां माडले के किले का ध्वंस और ··· रतुभाई को नीम्या ने उस रात की बात बतलाई हो,

सोना चाची याद हो आई। आते समय एक

गया था। सोना चाची, जिन्हें पिता ने अपनी जवानी में प्यार किया था, हर तरह से मातृपद के योग्य उस प्रौढ़ा की प्रथम भेंट ने ही डॉक्टर नौतम की जीवन-वीणा को झंकृत कर दिया था।

× × ×

"देखो अपने इस शैतान वल्ले की करतूत !" आगरा स्टेशन निकल जाने के बाद हेमकुंवर ने डॉक्टर नौतम को एक नई खबर सुनाई। "पाजी कहीं का ! शारदू बहन को कहता है शादू मामी !"

बीमारी से उठी हुई शारदू के गाल, जिनपर कबरे बालों की लटें झूल रही थीं, कान की सीमा तक लाल होगये।

"भले ही कहे !" रतुभाई ने स्वीकृति देते हुए कहा। शारदू का चेहरा और भी ज्यादा लाल हो गया।

अहमदाबाद स्टेशन छोड़कर गाड़ी आगे बढ़ी। घर के गांव का स्टेशन आने में अब बहुत देर न थी। परंतु रतुभाई की आंखों के आगे अभीतक वे दोनों दृश्य नाच रहे थे। एक तो कुहनी तक कटे हुए हाथ से नीम्या के 'अको' का सलाम और दूसरे दोनो हाथ पूरी तरह से कट जाने कारण सलाम तक कर सकने में असमर्थ उसकी प्यारी 'अमा' नीम्या के पति मांऊ-पू की वह दयनीय दशा !

"नीम्या क उसकी यह दशा कभी न दिखलाना, हे मेरे ईश्वर !"